गांधी मन्दिरकी द्वितीय प्रतिमा

सिद्धार्थ कुमार

-: या :-

महात्मा बुद्ध

नाटक
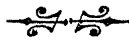
लेखक—

चन्द्रराज भण्डारी "विशारद"

प्रकाशक—

गांधी हिन्दी मन्दिर अजमेर।

इस प्रकारकी पुस्तकें मिलनेका पता - -

प्रथम संस्करण] भाद्रपद १९७९ [मूल्य १।) रुपया

प्रकाशक—
गांधी हिन्दी मन्दिर,
अजमेर।

सूचना।

उपहार

सेवामें
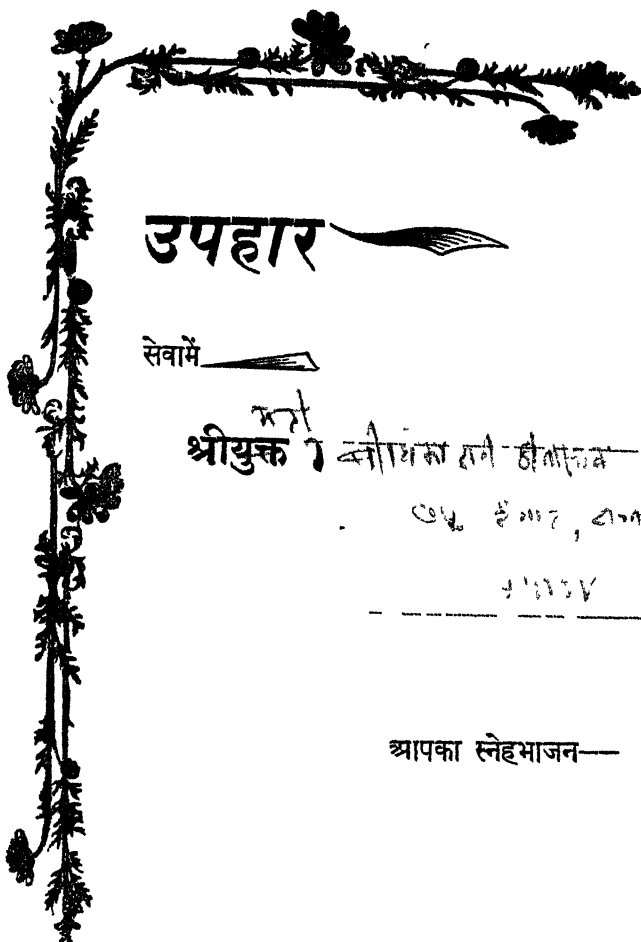
श्रीयुक्त

आपका स्नेहभाजन—

यशोधराके वाक्य नहीं हैं, वह गम्भीर गर्जना मानों किसी देवताकी प्रेरणा है।

"जाओ, नाथ! जाओ मनुष्य जातिका कल्याण करनेके निमित्त जाओ! यशोधरा प्रसन्न हृदयसे तुम्हें विदा करती है। जाओ, नाथ! जाओ सारा संसार दुःखसे करुणाका क्रन्दन कर रहा है, उसे मिटानेके लिए जाओ! यशोधरा हर्षित चित्तसे जगतके कल्याणकी वेदीपर तुम्हें भेंट करती है। जाओ, नाथ! जाओ अत्याचारसे पीड़ित इस संसारको साम्यवादका पवित्र सन्देशा सुनानेके लिए जाओ! यशोधरा तुम्हारा अभिनन्दन करती है।"

पाठक! इस समय एक बार यशोधराकी ओर देखें। वे देखेंगे कि, यशोधरा पतिबन्धनकी क्षुद्रताको अतिक्रम करके समग्र संसारकी माता बनकर खड़ी है, और सिद्धार्थ उसके आगे छोटे नज़र आरहे हैं। स्वयं सिद्धार्थ इस अलौकिक त्यागको देखकर मंत्रमुग्ध सर्पकी तरह स्तब्ध हो जाते हैं। और कहते हैं—"देवी! तुम्हारे इस अलौकिक त्यागको देखकर "त्याग" की उज्वलता दुगुनी हो गई है। तुम्हारे तेजके आगे सिद्धार्थ क्षुद्र नज़र आरहा है।"

यहांपर इतिहासका अतिक्रमण हो गया है। इतिहासमें यशोधराको जगानेका, कोई उल्लेख नहीं है। पर नाटकीय सौन्दर्य्यकी रक्षा करनेके लिए लेखकको ऐसा करनेके लिए बाध्य होना पड़ा है। इसके कारण सिद्धार्थ कुमारका चरित्र भी बिलकुल मानवीय होगया है, और यशोधराका चरित्र भी चमक उठा है।

यशोधराका चरित्र यद्यपि इस नाटकमें पूर्ण रूपसे परिस्फुटित नहीं हुआ है फिर भी वह केवल निर्मल पाषाण प्रतिमा

की तरह स्थिर या निर्जीव भी नहीं है। उसका चरित्र भी बिलकुल मानवीय तथा घात प्रतिघातोंसे संयुक्त है। प्रारम्भ जब वह पहले पहल अपने आपको सिद्धार्थकुमारके अर्पण कर देती है, उस समयसे लेकर अन्ततक वह पतिगत प्राणा, और आदर्श पतिभक्तिमें पूर्ण रहती है। फिर भी कर्त्तव्यका बोझ आ पड़ने पर आर्य्य ललना किस प्रकार अपने पति तकको तिलाञ्जलि दे सकती हैं इसका आदर्श उदाहरण है। इसके चरित्र चित्रणमे भी यत्र तत्र घटनाओंका घात प्रतिघात पाया जाता है। दो स्थानोंपर इसका चरित्र अधिक स्पष्ट हुआ है। पहले स्थलपर तो जहां वह अपने पतिको विदा कर देती है। और दूसरे स्थलपर जहां सिद्धार्थ बुद्धके रूपमें पुनः राज दरबारमें उपस्थित होते हैं। पन्द्रह बरसके पश्चात् उसके स्वामी—वे स्वामी जिनकी स्मृति ही अबतक उसके जीवनका आधार रही है—राज दरबारमें उपस्थित होते हैं। इस शुभ समाचारको सुनते ही उसका हृदय ललक उठता है। वह राजदरबारकी ओर दौड़ती है। पर सहसा एकदम रुक जाती है, कहती है—"मैं क्यों जाऊं? यदि मेरे स्वामी आये हैं तो वे मुझसे मिलने आएंगे। यदि मेरे प्रेममें कुछ भी आकर्षण है, अगर उसमें कुछ भी सत्यता है, तो वे अवश्य खिंचे हुए चले आएंगे। वे चाहे संसारके पूजनीय हों—चाहे श्रेष्ठ योगीश्वर हों, पर मेरे लिये तो वेही सिद्धार्थ हैं। मैं नहीं जाऊंगी!

अभिमानिनी! अब भी तुम्हारी टेक बनी हुई है!

इतनेहीमें बुद्ध आते हैं। अब यशोधराके धैर्य्यका बांध टूट जाता है। आंसुओंका सोता प्रबल वेगसे वह निकलता है। वह नाथ! नाथ! कहती हुई पतिके चरणोंपर गिर पड़ती है,

पर क्षणभर बादही सिद्धार्थके चेहरेकी ओर देखकर पीछे हट जाती है! "ना···तुम मेरे कौन होते हो? कोई नहीं, मैं अपने पत्नीत्वका बलिदान बहुत पहले कर चुकी हूं, तुम मेरे कोई नहीं! कोई नहीं !!" यह कहती हुई वह गर्म आह खींचती हुई पागलकी भांति वापस चली जाती है। हा अदृष्ट! पर क्षणभरके बादही वह वापस आती है, और कहती है, कोई नहीं ··पर पूजनीय तो हो। भगवन्! बुद्ध! मैं तुम्हारे दर्शन कर पवित्र हुई, तुम मुझे अपनी शिष्या बना लो।" हृदयमें होती हुई उथल पुथलका कैसा सुन्दर चित्र है! प्रेमका कैसा चमत्कार है!

चौथे अङ्कका तृतीय दृश्य लिखकर लेखकने यशोधराके चरित्रमे अति मानवीयताका दोष घुसनेसे बचा लिया है। उसकी कमजोरियोंका चित्र खींचकर लेखकने स्वाभाविकताकी एवं नाटकीय सौन्दर्य्यकी बहुत कुछ रक्षा कर ली है।

शुद्धोधनको लेखकने एक पुत्रवत्सल पिताके रूपमें खड़ा किया है। इस संसारमे "सिद्धार्थ" ही शुद्धोधनका सब कुछ है। वही उनकी जागृतिका धन, एवं सुषुप्तिका स्वर्ण स्वप्न है। लेकिन यह देखकर वे निराश रहते हैं कि, उनका सिद्धार्थ जन्मसे ही वैरागी रहता है। उसका मन वैराग्यसे हटा देनेके लिए-उसे संसारमे आसक्त करनेके निमित्त—वे तरह तरहके उपाय करते हैं। प्रमोद भवन बनाते हैं, विवाह करते हैं, आदि जहांतक उनसे होता है वे करते हैं। वे हमेशा ईश्वरसे प्रार्थना करते हैं—

"ईश्वर! मुझपर दया करो, मुझे लाख कष्ट देलो, नरक यंत्रणासे सतालो, पर सिद्धार्थका बालतक बांका मत करो। राज्य जाय, नाम जाय, जान भी जाय, सब कुछ जाय, केवल सिद्धार्थकुमार रहे, बस, मैं प्रसन्न हूं। कितना अन्ध पुत्र प्रेम है!

हाय! पुत्र प्रेममें अन्धे शुद्धोधन! मोहके वशीभूत होकर

तुम बालूके बांधसे नदीके वेगको रोकना चाहते हो ! जली हुई रस्सीसे शेरको बांधना चाहते हो !! कितना वृथा प्रयास है !

सहसा इस पुत्र प्रेममे पागल पिताकी ओर देखकर हम लोगोंका हृदय सहानुभूतिसे भर जाता है और आखें दो बून्द आंसू गिरा देती हैं। एवं मंत्रीके शब्दोंमे हम लोगोंका हृदय भी कह उठता है—"भगवन्! तुमने पिताका हृदय भी किस धातुका बनाया है।"

यशोधरासे विवाह होतेही कुछ समयके लिए तो ऐसा मालूम हुआ मानों शुद्धोधनके प्रयत्न सर्वतोभावसे सफ़ल हुए। हमेशाके वैरागी सिद्धार्थको इस प्रकार संसारमें आसक्त देखकर पितृ हृदय आनन्दके मारे बांसों उछल पड़ता है। वह कहता है—"मन्त्रीजी ! मेरी मनोकामना पूर्ण हुई। अब कुमार सिद्धार्थ वास्तविक राजकुमारकी भांति दृष्टिगोचर होता है। अब वह वैरागी नहीं रहा।

एकाएक बड़े प्रचण्ड वेगसे शुद्धोधनके हृदयपर धक्का लगता है। वह धक्का बडे ही प्रबल वेगसे लगता है। उसमें वे सम्हल नहीं सके। उनका हृदय चूर २ हो जाता है। उनकी आशाओंके रङ्गीन बादल देखते २ विलीन हो जाते हैं। उनका हृदय स्रोत एक लम्बी बाष्पश्वासके साथ २ सूख जाता है। रह जाता है जेठकी दुपहरीमें तपे हुए मरुस्थलके समान धधकता हुआ हृदय !

सिद्धार्थकुमार, जिसके लिए उन्होंने क्या २ नहीं किया वही उनका एक मात्र पुत्र उन्हें छोड़कर जंगलमें चला जाता है। पुत्र वियोगके कारण वे एकाएक पागल हो उठते हैं। उस पागलपनके उच्छ्वासमें सिद्धार्थपर कृतघ्नताका दोष भी आरोपण कर बैठते हैं।

उनके अन्ध प्रेममय हृदयमें उस गौरवका अनुभव नहीं होता है। वे कहते हैं—"सिद्धार्थ! मैंने तेरे लिए क्या नहीं किया? पर अरे नृशंस! तूने इस प्रकार उसका बदला चुकाया।" ये शब्द असंगत अवश्य हैं, पर उसके लिए शुद्धोधन दोषी नही हो सक्ते। प्रचण्ड वियोग्निकी लपटमें जलते हुए ही उन्होंने ये शब्द कहे थे। वे यहांतक आतुर हो जाते हैं कि, पागलपनके आवेशमें वे सिद्धार्थ पर शापकी वर्षा करने लग जाते हैं—

"क्या कहा?...... जायगा?........ नहीं मानेगा? अच्छा जा, लेकिन याद रखना इस बुड्ढे बापकी एक २ गर्म आह तेरे लिए प्रलयकी आँधी बनकर आयगी, और तेरे अस्तित्वको नष्ट कर देगी! इस बुड्ढेकी आंखका एक एक आंसू तेरे लिए कहरका दरिया बन जायगा और तुझे नेस्तनाबूद कर देगा!"

पर हाय! न तो अब आंखोंमें वे गर्म आंसू ही है, न मुंहमे वे गर्म आंहें! शुद्धोधनकी इस दीन एवं करुणाजनक हालतको देखकर हृदयमें दयाका स्रोत उमड़ आता है। एक राज राजेश्वरकी यह हालत! एकाएक ईश्वरपर क्रोध उत्पन्न होता है, भगवन्! क्या तुमने शुद्धोधनको यह दिन दिखानेके लिए ही सिद्धार्थकुमारके समान पुत्र रत्नको प्रदान किया था? यदि ऐसा है तो तुमने बड़ा अन्याय किया। या तो उसे पुत्र देते ही नहीं, दिया तो फिर छीना क्यों? और यदि छीना ही तो फिर उसके कलेजेको पत्थर क्यों नहीं कर डाला। तुमने उस खण्डहर चान्दनी क्यो डाली? और यदि डाली तो फिर हटाई क्यों? क्या शुद्धोधनको रुलाना, उसके कलेजेको भूसीकी आगमें जलाना ही तुम्हारा उद्देश्य है? कैसी विडम्बना है! कैसा अत्याचार है!!

नाटकमें स्थान स्थानपर लेखकने पात्रोंके द्वारा अपने निजी

विचारोंको भी प्रकाशित किया है। जैसे इन्द्रके मुंहसे वे कहलाते हैं—

इन्द्र—मनुष्यके अधिकारको मनुष्य किस दारुणताके साथ कुचल सकता है। मानवी स्वतंत्रता किस प्रकार पैरोंतले रौंदी जा सकती है, इसका रोमाञ्चकारी दृश्य देखना हो तो भारतवर्षमें देखो, परमात्माका नाम लेना भी जहां शुद्रोंके लिए मना है। अपनी आवश्यकताओंको कम करके सन्यास बृत्ति धारण करना भी जहां शुद्रोंके लिए पाप समझा जाता है। केवल गुलामी ही जहां पर उनका धर्म रह गया है, ब्राह्मणोंकी लातें खाना ही उनका कर्तव्य समझा जाता है, उस देशमें भी क्या महापुरुषके जन्मकी आवश्यकता नहीं है। ....जहांपर यज्ञकी पवित्रवेदी निरपराध पशुओंके खूनसे लाल की जाती है। जहां पर अर्थका अनर्थ करके हजारों गूंगे प्राणी धर्मके नाम पर काट दिये जाते हैं, उस देशके अधःपातमें भी क्या और कुछ कमी रह जाती है। जिस देशके अन्दर बसने वाली जातियां गुलाम बनानेमें ही अपनी उत्कृष्टता समझती है, उस देशका गुलाम होना जरूरी है।

उपरोक्त बातें केवल कल्पना प्रसूत ही नहीं है, ऐतिहासिक सत्यकी रक्षा करके ये बातें लिखी गई हैं।

एक स्थानपर और उनके विचारोंका नमूना देखिए।

सि० कु०—क्या कहा? शूद्रके लोटेमे दूध पीनेसे मैं अपवित्र होजाऊंगा शूद्र क्या मनुष्य नहीं होता? एक नीच कुलमें जन्म मात्र लेनेसे क्या उसके सब अधिकार नष्ट हो जाएंगे। नहीं हो नहीं सकता, जन्मसे कभी मनुष्य ब्राह्मण या शूद्र नहीं हो सक्ता यह विधान बिल कुल गलत है, अन्याय है। शूद्रमें भी ब्राह्मणके समान दया सहानुभूति, परोपकारिता, आदि गुणोंका होना

सम्भव है, उसी प्रकार ब्राह्मणमें शूद्रसे भी बढ़ कर हेय और घृणित दुर्गुण हो सकते हैं। इस प्रकारके नियमको आश्रय देना भी अपराध है। विधाताको लांछित करना है। प्रकृतिके नियमकी अवहेलना कर ब्राह्मणोंने अपनी क्षमतासे जिस अन्यायपूर्ण विधानकी रचना की है, वह एक दिन बालूकी भीतकी नाईं अवश्य गिर कर मिट्टीमें मिल जायगी।

आज देश पूज्य महात्मा गांधी भी इस नियमको दोहरा रहे हैं, और इसे (अछूत उद्धार) अपने आन्दोलनमें मुख्य स्थान दे रहे हैं।

कुछ दोष

अब इस नाटककी त्रुटियों पर कुछ विवेचनाकर हम इस भूमिकाको समाप्त करेंगे। पहली त्रुटि इसमें हास्यरसकी कमीकी है। हास्यरस नाटकका एक प्रधान रस है। बिना इसके नाटक की उज्वलता पूर्ण रूपसे प्रस्फुटित नहीं होती। यद्यपि कहनेके लिए, चन्द्रकला स्वर्णलता आदिके मुखसे बसन्त कालीन वर्षाकी बून्दोंको तरह कभी २ एक दो छीटें हास्यरसके उड़ते दिखाई देते हैं, फिर भी एक नाटकमें जितने हास्यरसकी आवश्यकता होती है, उसका दशांश भी इसमें नहीं है। यह कमी बहुत ही बड़ी है।

दूसरी त्रुटि इसमें गीतोंकी है। यद्यपि इसमें स्थान २ पर गीतोंका समावेश किया गया है, पर फ़िर भी उनकी तादाद कुछ अधिक होनेकी आवश्यकता थी, इसके अतिरिक्त प्रस्तुत नाटकमें स्थानपर वाक्य बहुत लम्बे हो गये हैं, जो नाटकीय भाषामें अच्छे नहीं लगते।

आदि, कुछ त्रुटियोंके रहते हुए भी हम हर्षित चित्तसे यह माननेको तैयार हैं कि, यह नाटक हिन्दीके मौलिक नाटकोंमें

बहुत उंचा स्थान ग्रहण करेगा। भद्दे मजाकों, और गन्दे एवं अश्लील गीतोंसे संयुक्त इश्क और ऐय्याशीसे भरे हुए नाटकोंको पढ़ते पढ़ते और देखते २ हिन्दी संसार बहुत कुछ ऊब उठा है, आशा है यह नाटक उसे बहुत संतोषप्रद मालूम होगा।

X. Y, Z.

सिद्धार्थ कुमार

पहला अंक
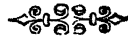
पहला दृश्य

(स्थान-बाटिका, समय-प्रभातकाल)

(सिद्धार्थ कुमार)

सिद्धार्थ—कैसा सुन्दर दृश्य है! प्रकृतिकी कृपासे यह बाटिका कैसी रम्य एवं पवित्र हो रही है! एक ओर मलिन मुख चन्द्रमा हीन गौरवके साथ अस्त हो रहा है, दूसरी ओर अपने प्रखर प्रतापसे संसारको प्रकाशित करता हुआ सूर्य्य उदय हो रहा है। उदय और अस्तका कैसा मधुर संगम है! एक ओर तालावमें कमल खिल रहे हैं, दूसरी ओर कुमुदनी बिचारी मुरझा रही है। ओफ़! इस सुन्दर संसारमें अप्रत्यक्ष रूपसे एक दुखकी बिजली खेल रही है।......

(कुछ साथियोका प्रवेश)

१ साथी—कुमार! कैसा आनन्द है। ये खेत और बाटिकाएं

प्रातःकालीन दृश्यसे कैसी सुन्दर हो रही हैं? गुलाब खिल रहे हैं।

कुमार—लेकिन उसके नीचे कांटे हैं!

२ साथी—चम्पा चहक रहा है।

कुमार—लेकिन उसके नीचे सांप है।

३ साथी—कमल प्रफुल्लित हो रहे हैं।

सिद्धार्थ—लेकिन उसपर भौंरे बैठे हुए हैं, जो उसे स्पर्श करते ही डंक मार देंगे। भाइयो! संसारमें कुछ सुख अवश्य है, लेकिन उसके परदेमें अथाह दुखका सागर लहरें मार रहा है। सौन्दर्य्य है, लेकिन उसमें विष है। प्रकाश है, लेकिन उसके बाद घोर अन्धकार है।

१ साथी—क्यों जी! कुमार क्या कह रहे हैं?

२ साथी—कुछ समझ नहीं पडता क्या कह रहे हैं।

३ साथी—कुमार! क्यों व्यर्थ बकवाद कर रहे हो। चलो उस सुन्दर तालावके किनारे चलें।

कुमार—चलो भाई तुम्हारी इच्छा है तो वहीं चलें।

(सब तलावके किनारे आते हैं)

१ साथी—देखिये कुमार! तालावका दृश्य कैसा सुन्दर है। इसपर पड़ती हुई बाल सूर्य्यकी किरणें मातृहृदयपर पड़ते हुए पुत्र स्नेहकी बिजलीकी तरह कैसी सुहावनी मालूम हो रही हैं! सुन्दर मछलियें किस प्रकार फुदक रही हैं, देखिये यह मछली......

(इतने हीमें एक बगुला उसे पकड़ लेता है ।")

सि—यह क्या हुआ ?

१ सा—कुमार ! बगुलेने मछलीको पकड़ लिया ।

सि—क्यों ?

१ सा—कुमार इतने ना समझ हो । अरे ! यह तो उसका भक्ष्य है ।

सि—भक्ष्य है ! क्या कहते हो ! क्या एक जीव भी दूसरे का भक्षण करता है ?

१ सा—नहीं तो क्या ? इतने भोले हो कुमार ?

सिद्धार्थ—हाय ! इसी संसारको लोग इतना सुन्दर बताते हैं । जहांपर सिवाय खून खराबीके दूसरा कोई दृश्य नहीं—जहां पर एक प्राणी दूसरे प्राणीको खाकर अपनी क्षुधाकी तृप्ति करता है—जहां पर सिवाय जीवन कलहके दूसरा कुछ व्यापार नजर नहीं आता, उसी संसारको लोग सुखमय कहते हैं ! (साथियोंसे) मित्रों ! अब तुम जाओ, मैं यही बैठकर कुछ सोचूंगा । बस प्रश्न मत करो .....जाओ ।

१ साथी—पागल हो गये हैं ।

२ साथी—बिलकुल पागल ।

३ साथी—क्या बक रहे हैं !

१ साथी—कुछ समझ नहीं पड़ता, चलो चलें महाराजको सूचित करें । (प्रस्थान)

सि—हाय भोले भाले मनुष्यो ! इसी संसारसे तुम्हें इतना

मोह है। इस झूठी मायामें लिप्त होकर तुम अपने आपको भूल गये हो। जहांपर घृणा और कृतघ्नताका कीचड़ भरा हुआ है। प्रतिहिंसा और द्वेषकी आग भभक रही है, उसीको तुम सुखमय समझते हो।....

(हंसोंकी एक पांति उडती हुई जा रही है, उसमेंसे तीर लग जानेसे एक हंस गिर पडता है, सिद्धार्थ दौड़कर उसे उठा लेता है)

सिद्धार्थ—हाय ! यह निर्बोध पक्षी कैसा तड़फडा रहा है ! उसे कितनी वेदना हो रही है। क्या तीरके लगनेसे इतनी वेदना होती है। (अपने हाथमे तीर मार लेता है।) ओफ ! बडी दुःसह वेदना है। इस पक्षीको इसी प्रकारकी वेदना हो रही है। इसके मर्म स्थलसे खून बह रहा है। भगवन् ! इस सृष्टिको बनाकर तुमने क्या लाभ उठाया ?

(हाथमें धनुष वाण लिये देवदत्तका प्रवेश)

देवदत्त—कौन सिद्धार्थ कुमार है ? भाई ! यह हंस मेरे तीर से गिरा है, इसलिये इसपर मेरा अधिकार है, तुम उसे मुझे दे दो।

सिद्धार्थ-देवदत्त ! तुमने उसे क्यों गिराया ?

देवदत्त—राजवंशके पुरुषोंका शिकार खेलना धर्म है।

सिद्धार्थ—धर्म है ? इसीको धर्म कहते हैं ! एक अनन्त गगनमें विचरण करनेवाले प्राणीके प्राण हर लेना ही क्या धर्म है ? हाय ! जिस मनुष्यके हृदयनिकुंजमें क्षमाका पवित्र पौधा

लहलहाया करता है-जिसके हृदयमें स्नेहकी सुन्दर सरिता शत धारा होकर बहा करती हैं; वहां पर क्या यह भी धर्म हो सकता है! जो मनुष्य हृदय आत्मबलिदानका पवित्र मन्दिर है, दया और सहानुभूतिका सुन्दर कुंज है, करूणा और कर्त्तव्य का केन्द्र है, वहां भी क्या यह सम्भव है? देवदत्त! इस अशान्ति और दुखके केन्द्र संसारमें मनुष्य हृदयकी ही ओर देखकर कुछ सन्तोष होता है। मनुष्य हृदय ही इस अनन्त लक्ष्यहीन संसारमें ध्रुवकी तरह स्थित है।

देवदत्त—मैं कुछ सुनना नहीं चाहता। इसे मैंने गिराया है, इसलिये इसपर मेरा अधिकार है। इसे मुझे दे दो।

सिद्धार्थ—देवदत्त! इतने आतुर मत होओ। जरा सोचो कि इस संसारमें दयाका भी कुछ अधिकार है या नहीं? रक्षाका भी कुछ मूल्य है या नहीं? यह निरपराध हंस तुमसे कृपाकी भिक्षा मांग रहा है दोगे या नहीं? बोलो देवदत्त! तुम्हारा धर्म रक्षा करना है, या हत्या करना? मारना है या बचाना?

देवदत्त—रक्षा करना मगर यह तो पक्षी है।

सिद्धार्थ—पक्षी होनेसे क्या इसका कुछ मूल्य नहीं है? देवदत्त! यह दुर्बल पक्षी है, उसीकी रक्षा करनेमे तो महत्व है जो सताया हुआ है, जो अपनी रक्षा आप करनेमें असमर्थ है उसी की रक्षा करनेमे मनुष्यका मनुष्यत्व है। जो सबल है, जो विजयी है, उसेकी हुई क्षमा मूल्य नहीं रखती। बिल्लीके मुंहमें गया हुआ चूहा यदि उस बिल्लीको क्षमा करदे तो उसका कुछ

मूल्य नहीं है। इसीलिये देवदत्त! मैं तुमसे इस हंसको छोड़ देनेकी प्रार्थना करता हूं। देवदत्त! इस हंसको छोड़ दो। (घुटने-टेक देते हैं)

देवदत्त—मैं कुछ सुनना नहीं चाहता। यदि तुम्हें बहस ही करना है तो चलो राज दरबारमें चलें।

सिद्धार्थ—यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो चलो।

(दृश्य परिवर्तन, राजा शुद्धोधनका दरबार)

(देवदत्त और सिद्धार्थका प्रवेश और अभिवादन करना)

शु—आओ कुमार! आओ देवदत्त! (आसन देना चाहते हैं)

सि—नहीं पिताजी! इस समय हम न्याय करानेकी हैसियतसे आये हैं। आप हमारे अभियोगका विचार कीजिए।

शु—क्या है भाई! तुम्हारा अभियोग?

देव—अभियोग यही है कि मैंने अपने तीरसे इस हंसको मार गिराया। इसपर हर तरहसे मेरा अधिकार है, लेकिन इसे बीचहीमें कुमारने ले लिया। इसलिये यह मेरा मुझे मिलना चाहिये।

शु—सो तो ठीक ही है। कुमार! इनका हंस इन्हें लौटा दो।

कुमार—पिताजी! मेरी बात भी सुनेंगे या इकतर्फा फैसला देंगे।

शु—हां, हां, कहो न।

सि—यह हंस अभी तक जीवित है। यदि यह मर जता

तो अवश्य देवदत्तका होता! मगर यह अभी तक जीवित है। देवदत्तने इसे मारा है; और मैंने इसे बचाया है।

देव—लेकिन उसके लिये परिश्रम मैंने किया है। उसे मैंने गिराया है, इसलिये उसपर मेरा अधिकार है।

सि—यदि गिरानेवालेका अधिकार है, तो क्या उठानेवालेका नहीं है? क्या दयाका कुछ भी मूल्य नहीं है?

पिताजी! यह संसार दयाकी ही ज्योतिसे तो जगमगा रहा है। दया भागीरथीकी तरह आकाशसे उतरकर, दुखसे सन्तप्त इस संसारमें शान्तिकी धारा बहाती है! यह दया चन्द्रमाकी चन्द्रिकाकी तरह जिसपर पड़ती है, उसे ही चमका देती है! गङ्गाके जलकी तरह जिसपर बरसती है, उसे ही पवित्र बना देती है! मनुष्यके स्नेहमय वक्षस्थलपर यह दया विजलीकी तरह खेला करती है। इसी दयाके वशमें होकर माता अपनी सन्तानका लाख अपराध होनेपर भी पोषण करती है। विजयी अपने कठोर शत्रुको भी क्षमा कर देता है। क्या दयाका कुछ भी मूल्य नहीं है।

(एक सन्यासीका प्रवेश)

सन्यासी—है! क्यों नहीं है? दया ही मनुष्य जातिका भूषण और कर्तव्यका केन्द्र है। मैं इस भरी राज सभाके बीचमें फैसला करता हूं कि यदि जीवनका कुछ भी मूल्य हो तो मारने वालेसे बचाने वालेका अधिकार अधिक है।

(सब स्तब्ध हो जाते हैं) (पटाक्षेप)

दूसरा-दृश्य
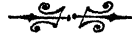
(राजा शुद्धोधनका मंत्रणागृह)

(मंत्री और सामन्त)

शु-कुमारका मन दिन प्रति दिन वैराग्यकी ओर ढुलकता हुआ चला जा रहा है। विलासकी ओर तो जैसे उनकी बिलकुल रुचि ही नहीं। शून्य आकाशके नीचे, या बाटिकामें, न मालूम क्या पागलकी तरह बका करते हैं। यदि इसका इलाज शीघ्र न होगा तो न मालूम भविष्यमें क्या होगा ?

मंत्री—बिलकुल ठीक है भगवन्। राजकुमारकी चित्त वृत्ति किसी भी विलास सामग्रीको ओर नहीं झुकती। न उन्हें शिकारका शौक है न सैरका। उनके मनको न तो ये ऊँचे २ गगन चुम्बी महलही आकर्षित कर सके हैं, न ये सुन्दर बाटिकाएंही। हरदम वे इनसे दूर रहनेकी चेष्टा किया करते हैं।

शु०—मंत्रीजी! तो इसका कुछ उपाय आपही बतलाइए न। जिससे कुमारकी चित्त वृत्ति इधरको फिर जाय। और सब लोग भी इस विषय पर अपनी २ सम्मति प्रगट करें।

१सामन्त—कुमारको कुछ अच्छे २ घोड़े मंगवा दीजिए, उन पर बैठकर वे प्रति दिन घूमने जाया करेंगे। जिससे उनकी चित्त वृत्ति इधरही झुक जायगी ।

२ सामन्त—कुमारको कुछ अच्छे २ सोने चांदीके खिलौने गाड़ियां वगैरह बनवा दी जांय।

शु०—इससे कुछ लाभ होता दिखाई नहीं देता। कुमार शर्त्त लगाकर घोड़ेको दौड़ाते हैं, पर यदि कहीं घोडा जरा भी हांफ़ने लग जाता है, तो फ़ौरन उतर पडते हैं। इसी प्रकार कई स्थानोंसे उनके लिए सोने चांदीके खिलौने भी आये थे, लेकिन वे उनकी ओर एक नज़र भी नहीं देखते।

मंत्री—भगवन्। एक उपाय मैने कुमारके लिए सोचा है। तीन ऐसे प्रमोद भवन बनाए जांय, जो तीनों ऋतुओंके अनुकूल हों। एक शरद् ऋतुमें रहने योग्य गर्म महल बनाया जाय, एक ग्रीष्म कालके लिए ठण्डा, और एक समशीतोष्ण। इन महलोंके अन्दर संसारका दुखमय कोलाहल भूलकर भी न पहुंचने पावे। कोई दुखिया, बीमार, मुर्दा, अपाहिज, उधरकी ओर न जाने पावे। केवल चारों ओर सुख शान्ति और संगीतके फ़व्वारे छूटा करें। चन्द्रमा नज़र आवे, लेकिन उसका कलंक नज़र न आय। गुलाब हो, मगर कांटे न दीखे-उदय नज़र आवे लेकिन अस्तका भान न हो। संगीत हो मगर रुदन न हो, स्नेह हो मगर विश्वास घात न हो- परोपकारिता सर्वत्र दीखे, मगर कृतघ्नता कहीं नज़र न आवे। मतलब यह कि, संसारकी एक भी दर्दनाक आह वहां न पहुंचने पावे। वहीं पर कुमार रक्खे जायें।

शुद्धोधन-बहुत ही उत्तम उपाय है।

१ सामन्त—मगर मैं इससे भी उत्तम उपाय बताता हूं।

जिस प्रकार मृगको वशमें करनेके लिए वीणाकी झंकार है। मछलीको फंसानेके लिए जाल है। उसी प्रकार मनुष्यका चित्त रागकी ओर प्रवृत्त करनेके लिए रमणी एक अमोघ अस्त्र है। यह अस्त्र बड़े २ योगियों, सन्यासियों, और त्यागियों पर भी अपना अचूक असर डालता है। आंधीके समान प्रबल, और जल-प्रपातसे भी अधिक भयानक, यह कामका कुसुम बाण बड़े २ पर्वतके समान दिलोंको भी फूसकी तरह उड़ा देता है।

मंत्री—मैं भी जोरके साथ इस प्रस्तावका अनुमोदन करता हूं। पर इसके अन्दर यदि एक त्रुटि रह जाएगी तो बड़ा अनर्थ हो जायगा। यदि महाराजने अपनी पसंदगीकी कोई कन्या चुन दी, और उससे कुमारका मन न मिला तो लेनेके देने पड़ जांएगे।

शु०—तो फिर इसके लिए क्या उपाय किया जाय?

मंत्री—इसके लिए एक उपाय है। एक उत्सव किया जाय। उसमे सभी सुन्दरी राजकुमारियें आमंत्रित की जांय, और कुमार उन्हें अपने हाथसे जवाहिरात वितरण करें, जिसपर कुमारकी चित्त वृत्ति चलायमान हो, उसीसे उनका विवाह हो जाय,।

राजा—बहुत ठीक उपाय है। प्रधानजी! तुम्हारी बुद्धिकी कहांतक तारीफ़ करूं। तुम वृहस्पतिसे भी अधिक बुद्धिमान हो। अस्तु। उत्सवकी तिथि शीघ्र नियत कीजाय। और प्रमोद भवनका कार्य्य प्रारंभ हो!

मंत्री—जो आज्ञा। (प्रस्थान)

तीसरा दृश्य

—:०:—

(स्थान—यशोधराका कमरा)

(यशोधरा)

यशोधरा—सुना है कि राजा शुद्धोधन एक उत्सव कर रहे है। उसमे प्रायः सभी सुन्दरी कुमारिकाओंको निमंत्रण है। सिद्धार्थ कुमार उन सबको जवाहिरात वितरण करेंगे। मुझे भी निमंत्रण है।... .इस संवादको सुनकर मेरे हृदयमें उथल पुथल क्यों मच रही है?—चित्त क्यों चंचल हो रहा है? पैर क्यों कांप रहे हैं? जान पड़ता है जैसे हृदयमें गुप्त रूपसे एक युद्ध ठन गया है। यह क्यों?.... सिद्धार्थ कुमार बांटते हैं तो बांटे, उसमे मेरा क्या? वे मेरे कौन होते हैं? फिर उनकी ओर मेरा चित्त क्यों आकर्षित हो रहा है? उनके सम्मुख जानेमें क्यों एक प्रकारका संकोच हो रहा है? देखती हूं, जैसे बहुत सुदूर अतीत कालमे एक बिलकुल अस्पष्ट लेकिन सत्य हमारा कुछ सम्बन्ध है। देखती हूं जैसे सुदूरवर्ती भूत और निकट भविष्य मिलनेकी चेष्टा कर रहे हैं।

(चन्द्र कलाका प्रवेश)

चन्द्र—यशोधरा! अभीतक यहां क्या कररही हो? समय बहुत कम रह गया है। तुमने अभीतक श्रृंगार नहीं किया?

यशोधरा—अभी करलेती हूं चन्द्रकला! आज चित्त बहुतही चंचल हो रहा है।

चन्द्र०—सोतो होवेहीगा। क्यों बहन! गुलाब जामुन खाते

समय भी चित्त चंचल होता है या नहीं। झट रक्खा मुंहमें और गट। क्यों है न?

यशोधरा—चन्द्रकला! हंसीको छोड़ दे, नही तो मैं चलनेका विचारही स्थगित कर दूंगी।

चन्द्र०—कर दो न, अभी करदो! डर दिखाती हो। करदो, स्थगित करदो।

यशोधरा—चन्द्रकला! तुझे हर समय हंसीही सूझती है?

चन्द्र०—ठीक तो हैं। मेरा जन्मही हंसतेमें हुआ, बिवाह होते समय भी मैं खूब हंसी, हमलोगोंका प्रथम मिलन भी हंसतेमे ही हुआ। फिर हंसी क्यों न सूझेगी।

यशोधरा—अच्छा तो मै न चलूंगी।

चन्द्र०—चलो, चलो, तुम कोई अंगूर या मालपूआ थोड़ीही हो, जो देखते ही निगल जायगा। बहुत होगा तो एकाध आंख मार देगा, बस इससे अधिक कुछ नहीं होगा, तुम भी कुछ मुस्कराकर चल देना।

यशोधरा—(एक हलकी चपत मारकर) हमेंशा हंसी, बहन! जरा गंभीरतासे सुनो तो एक बात कहूं।

चन्द्र०—अच्छा तो मुझे गंभीर हो लेने दो। (नाक भौं सिकोड़ लेती है)

यशोधरा—सुनो......

चन्द्रकला—ठहरो, अभी पूरी तरहसे गंभीर नहीं हुई...हां अब कहो।

यशोधरा—चन्द्रकला! आज मुझे ऐसा मालूम हो रहा है, जैसे अतीत कालमें सिद्धार्थके और मेरे कुछ सम्बन्ध रह चुका है। यद्यपि स्पष्ट मालूम नही होता, फिर भी बहुत दूरसे सुनाई

देनेवाली बीणाकी अस्पष्ट झंकारकी तरह, या बादलोंके बीचमें नजर आते हुए ध्रुवकी तरह वह मुझे दिखाई देरहा है।

चन्द्रकला—कुछ नहीं बहन! या तो यह केवल भ्रम है। या प्रेमका गुप्त आकर्षण है। तुम कपड़े पहनो।

(यशोधरा श्रृंगार करके तय्यार होती है)

चन्द्र०—वाह! क्या श्रृंगार किया है, इसे देखकर क्या मजाल है सिद्धार्थ की, जो वह अचल रह सके। मुझे तो कलाकन्द भी इतना सुन्दर नहीं दिखाई देता।

(दोनों जाती हैं)

(दृश्य परिवर्त्तन)

(स्थान—उत्सवका मण्डप)

(सिद्धार्थकुमार हीरे मोतीसे भरी हुई थालियें पासमें रखकर एक आसनपर बैठे हुए हैं)

(क्रम क्रमसे अपूर्व श्रृंगारसे सुसज्जित नीचा मस्तक किये हुए, अपने सौन्दर्य्यकी बिजलीको चारों ओर छिटकाती हुई, एक एक कुमारी आती हैं, सिद्धार्थकुमार उन्हें जवाहिरात दे देकर बिदा करते हैं। इस प्रकार कई कुमारिकाएं निकल जाती हैं। यहांतक कि, सिद्धार्थके पाससे सब जवाहिरात चुक जाते हैं। इतनेहीमें सोलहो श्रृंगारोंसे युक्त अपने सौन्दर्य्यसे अप्सराओंको भी लजानेवाली यशोधरा निःसंकोच भावसे चन्द्रकलाके साथ प्रवेश करती है, और कुमारके पास आकर खड़ी हो जाती है।)

यशोधरा—कुमार! क्या मुझे भी अपना भाग मिलेगा?

सिद्धार्थ—(चौंककर स्वगत) अरे! यह कौन है? कैसा

अपूर्व सौन्दर्य्य है? भयानक अंधेरी रातमें बीणाकी मधुर झंकारकी तरह, घोर बृष्टिके पश्चात् सूर्य्यके शान्त प्रकाशकी तरह, स्वच्छ नीलनभोमण्डलमें उज्वल उषाकी तरह, यह कैसा सौन्दर्य्य है? लहरें लेते हुए प्रशान्त सागरमें पड़ती हुई, प्रातः कालीन सूर्य्य किरणोंकी तरह स्थिर और चंचल, गंगाके जलमें पड़ते हुए पूर्णचन्द्रके बिम्बकी तरह सौम्य और सुन्दर, यह कैसी ज्योति है? इसके नीले और लाल वस्त्रने मुखके सौन्दर्य्यके साथ मिलकर जिस अपूर्व इन्द्रधनुषकी रचनाकी है, वह अतुलनीय है। ..यह क्या? मेरा चित्त इतना चंचल क्यों हो रहा है?

यशो—क्या प्रार्थना अस्वीकृत होगी? या कुमारका खज़ाना ही खाली हो गया है?

सिद्धार्थ—सुन्दरी! तुम्हारे लिए मेरा खजाना खाली होनेपर भी भरा हुआ है। हीरे और मोती तो कंकड़ पत्थर हैं, वे तुम्हारे योग्य नहीं हो सके। तुम्हें तुम्हारे ही योग्य वस्तु मिलना चाहिए। यह लो (गलेका मूहुमूल्य हार उतारकर यशोधराको देते हैं) इस हारके साथ साथ देवि! सिद्धार्थकी भी याद रखना। इस हारमे केवल हीरे मोती ही नहीं है, इसके अन्दर एक सजीव, जीता जागता हृदय मौजूद है। यह हार "प्रेमका प्रतिदान है।"

(यशोधरा मुस्कराती हुई जाती है)

(पटाक्षेप)

सिद्धार्थ—(स्वयं) सिद्धार्थ! सिद्धार्थ!! तुमने यह क्या किया? एक रमणीके प्रेममें पड़कर तुम अपने आपको भूल गये। सिद्धार्थ! यह तुम्हारी पराजयकी पराकाष्ठा है। ····· क्या प्रेम भी कोई वस्तु है? (सोचकर) हां···होना चाहिये···

सिद्धार्थ कुमार

देवि   यह केवल हार ही नहीं है, यह प्रेमका प्रतिदान है ।

सि० कु० अङ्क १ दृ० २

प्रेस, कलकत्ता ।

सिद्धार्थ कुमार इसके लिये तय्यार हों, और वे अपने प्रति-द्वन्दियोंको परास्त कर सकें, तो यशोधरा सहर्ष उनके गलेमें बर-माला डालेगी। अन्यथा, असम्भव है।

मंत्री—यह तो बड़ी कठिन शर्त्त है।

शुद्धो—बिलकुल असम्भव है। धनुष विद्यामें देवदत्तके बराबर कोई निपुण नहीं है। तलवार चलानेमे नन्द अपनी सानी नहीं रखता। और अश्व विद्यामें तो अर्जुन अकेला ही है।

(सिद्धार्थ कुमारका प्रवेश)

सिद्धार्थ—किसी भी विद्यामें कोई सिद्धार्थ कुमारकी सानी रखता। पिताजी आप चिन्ता मत कीजिए। क्षत्रिय कुमारको युद्धकला सिखानेकी आवश्यक्ता नहीं पड़ती। यह तो उसका जन्म सिद्ध अधिकार है।

शु—मेरे भोले भाले कुमार! सोतो ठीक है। मगर तुम्हारा यह दुबला पतला और युद्धकलासे अनभिज्ञ शरीर कहाँ तक सफ़लता प्राप्त करेगा?

सिद्धार्थ—इन सब बलों और कलाओंसे भी ऊपर एक और शक्ति है, वह शक्ति बहुतही जबरदस्त है। इन्द्रके सिंहासन तकको हिलादेने वाली, सूर्य्यके प्रतापको भीठण्डा करदेने वाली, वह आत्मिक शक्ति इन सब शक्तियोंसे अधिक बलवान् है। किस शक्तिके बलसे पैदा होते ही सिंहका बच्चा विशाल डील डोल वाले हाथीके मस्तकको विदीर्ण करनेमें समर्थ होता है? किस शक्तिके बलसे हजारों सशस्त्र कायरोंमेंसे एक निरस्त्र वीर छाती ताने हुए निकल जाता है? पिताजी वह आत्मिक शक्ति है, वह प्रेमका बल है। इस बलके सम्मुख संसारके सब बल फीके हो जाते हैं। तो पिताजी! आज ही इसबातकी परीक्षा हो जाय।

संसारमें ऐसी कोई शक्ति नहीं जो मुझे यशोधराकी प्राप्तिमें बाधा देसके। आप शीघ्र तैयारी करवाइये मैं आताहूं।

(प्रस्थान)

पांचवा दृश्य

(यशोधराका कमरा)

(यशोधरा)

यशोधरा—परिवर्त्तन, परिवर्त्तन, इतना भारी परिवर्त्तन, वो मैंने अपने आपमें कभी नहीं देखा। हृदयके अन्दर जैसे एक भारी तूफ़ान उठरहा है। प्रलयकी आंधीकी तरह जैसे एक अज्ञात आकर्षण मुझे उड़ाये लिये जा रहा है। ...... अहा। कैसा भोला मुख था? योवनका गांभीर्य्य और शैशवका सारल्य एक ही साथ मुख पर खेल रहा था। जाते जाते क्या कहा था? "प्रेमका प्रतिदान" !! कैसे मधुर शब्द थे, उन शब्दोंसे मालूम होता था जैसे उनके साथ साथ एक हृदय खिचा हुआ चला आरहा है। सिद्धार्थ! सिद्धार्थ !! यह तुमने क्या किया? ....

(चन्द्रकलाका प्रवेश)

चन्द्र—सखि! क्या सोच रही हो? सोचते २ क्या आकाश पाताल एक कर दोगी। कुछ सुना भी है?

यशो—ना...कोई नई खबर नहीं सुनी।

चन्द्र—राजा शुद्धोधनका दूत तुम्हारे पिताके पास एक पत्र लेकर आया था, उस पत्रमें सिद्धार्थ कुमारके लिए तुम्हारी याचनाकी गई थी।

यशो—(उत्कंठित भावसे) पिताजीने क्या उत्तर दिया।

चन्द्र—बिलकुल बरफ़ीकी तरह उत्तर नहीं दिया। देते तो अच्छा था... लेकिन नहीं दिया. . हूं। (सोचती है।)

यशोधरा—क्या दिया ?

चन्द्र—बिलकुल खट्टे बेरकी तरह! कहा कि, यदि कुमार यशोधराके सब याचकोंको परास्त करदेंगे, तो यशोधरा अवश्य उनकी होगी। अन्यथा असम्भव है। सखि! क्या तुम सिद्धार्थको चाहती हो?

यशोधरा—यदि चाहती होऊं ?

चन्द्र—तो असम्भव है। ना...नहीं हो सक्ता।

यशोधरा—क्या नहीं हो सक्ता ?

चन्द्र—(अनसुनी करके) कैसे हो सक्ता है? हो ही नहीं सक्ता।

यशोधरा—अरी! क्या नहीं हो सक्ता ?

चन्द्र—सिद्धार्थका मिलना।

यशो—क्यों ?

चन्द्र—इसलिए कि, कुमार देवदत, नन्द अर्जुन आदिसे नहीं जीत सक्ते।

यशो—क्यों नहीं जीत सक्ते? यदि मैं उन्हें सच्चे हृदयसे चाहती हूं—यदि मेरा उनपर सच्चा प्रेम है-तो संसारकी कोई शक्ति उन्हें पराजित नहीं कर सकती। क्या आज ही विधनाका सारा नियम मिट्टीमें मिल जायगा क्या आज पाशविक बलकी टक्करसे प्रेम चूर २ हो जायगा? नहीं हो नहीं सकता। आज भी विश्व पर, विधाता पर, और विधान पर प्रेमका साम्राज्य है। पाशविक बलका नहीं। सिद्धार्थ किसीसे नहीं हार सकते। (गर्वसे सीना-तन जाता है)

चन्द्र—(स्वगत) हाय सखि यह विश्वाश केवल पागलका प्रलाप है। यदि यही सत्य होता...... (कुछ कोलाहल सुनकर प्रगट) अच्छा सखि ! यह काहेका कोलाहल है, जरा देख आऊं। (बाहर जाती है)

यशोधरा— पिताजी ! पिताजी ! यह तुमने क्या किया ? क्या तुमने प्रेमको खरीदने और बेचनेकी वस्तु समझ रक्खा है ? क्या जो बीर होता है वही प्रेमिक भी होता है ? नहीं पिताजी ! नहीं ! बीरता और प्रेममें कोई सम्बन्ध नहीं। बीरता सूर्य्यका भीषण ताप है, प्रेम चन्द्रमाकी शीतल चान्दनी। बीरता समुद्रका प्रचण्ड तूफ़ान है, प्रेम झरनेका मधुर कलकल नाद है। बीरता विज्ञान है प्रेम कवित्व। बीरता तबलेकी ढप २ है, प्रेम, बीणाकी मधुर झंकार। प्रेम और बीरतामें कोई सम्बन्ध नहीं। रमणीका हृदय बीरको नहीं चाहता, वैज्ञानिकको नहीं चाहता, राजनीतिज्ञको नहीं चाहता, वह चाहता है केवल प्रेमिकको।

(चन्द्र कलाका प्रवेश)

यशो—क्या है चन्द्रकला।

चन्द्र—बिलकुल आश्चर्य्य ! एक दम आश्चर्य्य !!

यशो—पर वह आश्चर्य्य है क्या ?

चन्द्र—एक दम अनोखी बात !

यशो—अरी पर कहेगी भी ?

चन्द्र—क्या कहूं। न देखी और न सुनी !

यशो—अरे ! मुझे भी तो मालूम हो।

चन्द्र—लो तो तुम भी सुनो। सिद्धार्थ कुमारने अपने सब प्रतिद्वन्दियोंको ' कौशलमें बराबरी करनेके लिए ललकारा है। आज परीक्षा होगी, तुम्हे भी वहां जाना पड़ेगा। कहो, है न बिलकुल आश्चर्य्य !

यशो—इसमें काहेका आश्चर्य्य ? यह तो बिलकुल स्वाभाविक है। एक क्षत्रिय कुमार दूसरे क्षत्रिय कुमारको प्रतिद्वन्द्-तामें ललकारे, उसमें आश्चर्य्य ही क्या है ?

चन्द्र—लेकिन कितना भारी दुस्साहस है ? क्या तुम स्वप्नमें भी कल्पना कर सकती हो कि, वे जीत जाएंगे ?

यशो—स्वप्नमें क्यों जागतेमें ! मैं विश्वास पूर्वक कह सकती हूं कि, विश्वकी कोई भी शक्ति कुमारको पराजित नहीं कर सकती। फिर चाहे विधाता ही उनके विरोधमें क्यों न खड़े हो जायँ। प्रेमके सम्मुख उन्हें भी पराजित होना पड़ेगा।

चन्द्र—यह केवल भ्रम है।

यशो—यदि ध्रुवका अचल होना भ्रम हो—यदि चन्द्रमाका शीतल होना भ्रम हो-यदि माताका स्नेह भ्रम हो—यदि रमणीका हृदय भ्रम हो—तो यह भी भ्रम हो सकता है। चन्द्रकला ! यह पागलका प्रलाप नहीं है। इन्द्र धनुषका रंग नहीं है। यह ध्रुव सत्य है।

चन्द्र—(स्वगत) यशोधरा। परमात्मा तुम्हारी सब इच्छा पूर्ण करे। (प्रगट) अच्छा तो जो कुछ होगा सामनेही होगा। तुम तैय्यार हो जाओ। मैं पालकी लेकर आती हूं। (प्रस्थान)।

यशोधरा—भगवान ! यदि पूर्वजन्ममें या इस जन्ममें मैंने कोई भी अच्छा कार्य्य किया हो, तो मुझे इस परीक्षामें सच्ची उतार दो। देवगण ! मैं और कुछ नहीं चाहती केवल सिद्धार्थको विजयी कर दो। मेरे प्रेमको कसौटीपर सच्चा उतार दो। संसारमें कोई यह न कह सके कि, प्रेमने पाशविक बलसे हार खाई ! यदि ऐसा हो गया--यदि सिद्धार्थ पराजित हुए तो स्मरण रखना भगवन् ! इस संसारमें मैं फिर मुंह न दिखाऊंगी। घर २ से, झोपड़ी २ से, आकाश और पातालसे तुम्हारे विश्वास

को उठा दूँगी ..यह क्या ? हृदयमें हलचल हो रही है। हर्षसे रोमाञ्च हो रहा है। सिद्धार्थ ! विजयी होओ। मेरा प्रेम आंखोंके पलकके समान तुम्हारी रक्षा करे। संसारकी कोई भी शक्ति तुम्हें पराजित न कर सके।

(पटाक्षेप)

छठवां-दृश्य

(स्थान-रंगभूमि)

(दर्शक खड़े हैं। महाराज शुद्धोधन, दण्डपाणि, व अन्य पदाधिकारी एक ओर बैठे हैं। सिद्धार्थ, नन्द, अर्जुन, देवदत्त आदि मैदानमें हैं। एक ओर यशोधराकी पालकी खड़ी है)

सिद्धार्थ—(यशोधराकी ओर देखकर) इस कुमारी रत्नको पानेके लिए, जितनी योग्यता आवश्यक है, उतना योग्य होनेका मैं दावा करता हूं। यदि कोई मुझसे अधिक योग्य होनेका अभिमान रखता हो तो मैं उसे आमंत्रित करता हूं। वह आकर मुझे परास्त करे।

नन्द—(आगे बढ़कर) यदि ऐसा है तो मैं उस आमंत्रणको स्वीकार करता हूं। कुमार अपने धनुषको सम्हालो और निशाना लगाओ।

(ऐसा कहकर नन्द छः सौ गज दूरपर रक्खे हुए एक ढोलको बेध देता है)

सि—और भी कोई वीर यदि इस कलामें प्रतिस्पर्धा रखता हो तो वह भी आ जाय।

अर्जुन—मैं आमंत्रणको स्वीकार करता हूं। (ऐसा कहकर वह भी उतनी ही दूरी पर रक्खे हुए ढोलको बेध देता है)

सिद्धार्थ—देवदत्त! तुम भी आ जाओ।

देवदत्त—(मुसकुराकर) अच्छी बात है।

(ऐसा कहकर वह वहांसे आठ सौ गज दूरीपर रक्खे हुए ढोलको बेध देता है) (सब लोग आश्चर्य्य चकित हो जाते हैं। यशोधरा निराश हो मुंहपर कपड़ा डाल लेती है)

सिद्धार्थ—और भी कोई वीर इस कलामें प्रवीण हो तो उसे भी मैं आमंत्रित करता हूं।

सब—कोई नहीं है! कोई नहीं है!!

सिद्धार्थ—अच्छा तो मेरे लिए धनुष मंगवाया जावे, (एक-आदमी एक रूप हरी डोरका बड़ा भारी धनुष लाता है)

सिद्धार्थ—(धनुष हाथमें लेकर खींचता है, खींचते ही दो टुकडे हो जाते हैं) क्या, यह बच्चोंके खेलने योग्य धनुष सिद्धार्थके हाथमें दिया जायगा? क्या उसके योग्य धनुष शस्त्र शालामें ही नहीं है?

शुद्धो—(हर्षोन्मत्त होकर) प्रधानजी! शीघ्र जाओ, और प्राचीन समयका सिंहबाहुवाला धनुष जो शस्त्र शालामें रक्खा है, और जिसे आजतक कोई वीर नहीं खींच सका है, ले आओ। सिद्धार्थ उसीके योग्य है।

(प्रधानका जाना और एक प्रचण्ड धनुषको लेकर वापस आना)

सिद्धार्थ—(धनुषको लेकर कर्णपर्यन्त तानकर है) संसार देखे कि प्रेमका बल सब बलोंसे श्रेष्ठ है।

(बाण छूटता है और १००० गज दूरीपर ढोलको बेधता हुआ अदृश्यका हो जाता है। यशोधराके मुखपर एक प्रसन्नताको रेखा चमक जाती है)

सिद्धार्थ—और भी किसी कलामें कुमार सिद्धार्थका कोई प्रतिद्वन्द्वी है?

देवदत्त—कुमार! एक विजयसे क्यों इतने फूल रहे हो? आओ अब तलवारके युद्धमें देवदत्त तुम्हें ललकारता है।

सिद्धार्थ—अच्छी बात है देवदत्त! अपना कौशल दिखाओ। (यह सुनते ही देवदत्त एक छः इंच मोटे वृक्षको एक झटकेमें काट देता है)

सिद्धार्थ—और भी कोई बीर इसमे अपना कौशल दिखाना चाहता है?

अर्जुन—क्यों नहीं?

(ऐसा कहकर वह सात इंच मोटे बृक्षको काट देता है)

नन्द—कुमार अब कुछ नन्दका कौशल भी देखो। (ऐसा कहकर नौ इंच मोटे वृक्षको काटकर मुसकुराने लगता है)

सिद्धार्थ—नन्द! अब जरा दुबले पतले सिद्धार्थकी योग्यता भी देख लो।

(ऐसा कहकर दो बृक्षोंको एक झटकेमें काट देते हैं)

(चारो ओरसे हर्ष ध्वनि)

सिद्धार्थ—और भी किसी विद्यामें किसीको अभिमान हो तो आवे। कुमारी यशोधरा उसको बर माला पहनानेके लिए तैय्यार है।

अर्जुन—कुमार! अब यदि साहस हो तो घुड़दौड़में अर्जुन-से बाजी मारो।

सिद्धार्थ—अच्छी बात है।

(सब लोग घोड़े दौड़ाते हैं, सिद्धार्थका घोड़ा सबसे आगे रहता हैं)

अर्जुन—(क्रोधसे दाँत पीसता हुआ) कन्तकके समान घोड़ेपर बैठकर बाजी मारना कोई कठिन नहीं है। बहादुरी तो तभी है जब अशिक्षित घोड़ेपर बेलगामके बैठकर उसे दौड़ाया जावे।

सिद्धार्थ—अच्छी बात है, उसके लिए भी मैं तैय्यार हूं। आज कुमार सिद्धार्थको कोई पराजित नहीं कर सकता।

(एक बहुत विकराल घोड़ा मंगाया जाता है, सब लोग उस पर बैठनेकी चेष्टा करते हैं, मगर वह भीमकाय प्रणी सबको उठा २ कर फेंक देता है। यह देखकर यशोधरा चिन्तित हो ऊपरकी ओर हाथ जोड़ती है। अन्तमें अर्जुन उसपर बैठनेमें समर्थ होता है, पर थोड़ी दूर जाते ही वह घोड़ा उसे भी गिरा देता है। फिर सिद्धार्थ कुमार आते हैं। और प्रेम पूर्वक उस घोड़ेको पुचकारते हैं, घोड़ा गायके समान हो जाता है। सिद्धार्थ उसपर बैठकर उसे दौड़ाते हैं। चारों ओरसे हर्ष ध्वनि होती है।)

सिद्धार्थ—(सबके सामने सिर झुकाकर) और भी कोई प्रतिद्वन्दी हैं ?

सब—कोई नहीं २! कुमार सिद्धार्थकी जय।

शु—प्यारे कुमार! तुमने अपने अक्षय बलसे सारे प्रतिद्वन्दियोंको परास्तकर संसारको आत्मिक बलका एक नवीन सदेशा सुनाया है। तुमने सबके सम्मुख साबित कर दिया है कि, प्रेमकी शक्ति ही संसारकी अन्य सब शक्तियोंपर साम्राज्य करती है। इस विजयके लिए मै तुम्हें बधाई देता हूं। अब तुम कुमारी यशोधराको प्राप्त कर अनन्त कालतक अक्षय सुखका उपभोग करो।

कुमार—(शिर झुकाकर) पिताजीका असीम अनुग्रह है।

दण्डपाणि—प्रिय कुमार! आज तुमने जो चमत्कार बतलाया है उससे सारा संसार चकित हो रहा है। आजसे तुम यशोधराके सर्वस्व हुए। इस विजय प्राप्तके उपलक्ष्यमें मैं तुम्हें यह बहुमूल्य हार उपहारमें देता हूं। स्वीकार करो।

सिद्धार्थ—(हार लेकर) आर्य्यका अनुग्रह है।

(कुमार और यशोधराके सिवा सब जाते हैं।)

यशोधरा—सिद्धार्थ! सब लोगोंने तुम्हें बधाई और उपहार दिये। पर मैं क्या दूं? मैं देती हूं अपने अक्षय प्रणयकी पवित्र प्रेम माला! (माला पहनाती है) इस क्षण भंगुर संसारके मिथ्यावादके बीचमें—इस मक्कारीसे भरी हुई दुनियाके अन्दर—इस कालचक्रसे बदलते हुए समयमें यह प्रणय उसी प्रकार स्थित है जैसे नक्षत्रोंमे ध्रुव। और पर्वतोंमें सुमेरु! खिले हुए कमलसे भी अधिक सुन्दर, गंगाजलसे भी अधिक पवित्र, और ईश्वरीय करुणासे भी अधिक मूल्यवान यह माला है। यह उस हारका प्रतिदान है।

पटाक्षेप।

(पहला अङ्क समाप्त)

दूसरा अंक ।

प्रथम—दृश्य

(स्थान-प्रमोदभवन सिद्धार्थकुमार,)

(गायिकाएं गा रही हैं ।)

पढो प्रेम का पाठ पुनीत ।
छोड़ मोह स्वारथ को सारे विश्व प्रेमका सुनो संगीत ॥
प्रेम चन्द्र की शुभ्र चान्दनी मोह तिमिरका पुंज ।
प्रेम पारिजातकके सम है मोह कटीलो कुंज ॥पढो॥
प्रेम मातृ स्नेह सा उज्वल मोह जारका फ़न्द ।
मत भूलो मोहमे प्यारे प्रेमी बनो स्वच्छन्द ॥पढो॥

(गायिकाएं धीरे २ जाती हैं)

सिद्धार्थ—चारो ओर आनन्द ही आनन्द नज़र आरहा है । हर तरफ़ सुख और शान्तिका दौड़ दौड़ा हो रहा है । इस संसारको कौन दुखमय कह सकता है ? प्राकृतिक सुख-गार्हस्थ्य सुख—दाम्पत्य सुख आदि सभी तरहके सुख इस संसारमें मौजूद हैं ।

यशोधरा ! केवल तुम्हारी ही कमीके कारण सब सुख फ़ीके मालूम होरहे है । हे मुग्ध बसन्तकी कोकिला ! मेरे हृदय रूप नन्दन काननके पारिजात !! मेंरे अन्धेरे हृदयके दीपक ! मेरी जागृतिके सुख ! और सुषुप्तिके सुनहरी स्वप्न!!! तुम्हारे बिना यह

सब आमोद फ़ीके मालूम होते हैं। (कुछ सोचकर) लेकिन इससे क्या? दोही एक मासमें तो विवाह होजानेवाला है। फिर इतनी आतुरता क्यों? लोगोंने भी प्रेमके विस्तीर्ण सागर-को विवाहकी मर्यादामें बांध दिया है।......तो क्या विवाह की वास्तवमें आवश्यक्ता है? हां ..अवश्य है। विवाह एक स्वर्गीय पदार्थ है—स्वार्थ त्यागका सच्चा मन्त्र है—निष्काम साधनाका प्रतिबिम्ब है। विवाहके द्वारा मनुष्य जान लेता है कि, मुझपर एक कर्त्तव्यका बोझ पड़ गया है। वह जान लेता है कि, विषय वासनाके लिए विवाहकी सृष्टि नहीं हुई है, बलिक कर्त्तव्यके लिए विवाह की सृष्टि हुई है। वह जान लेता है कि, पति और पत्नी खरीदने और बेचनेकी सामग्री नहीं है। विवाह एक आवश्यक कर्त्तव्य है। निष्काम साधना है! वास्तवमें विवाहकी बहुत आवश्यक्ता है।

दूसरा दृश्य

०-०-०-०-०-०

[यशोधरा और चन्द्रकला]

यशोधरा—वह दृश्य अभी भी मेरी आखोंके सम्मुख नाच रहा है, चन्द्रकला! बड़ा अपूर्व दृश्य था, वे......मेरे हृदय सर्वस्व, एक बार मेरी ओर प्रेम भरी दृष्टिसे देखते हैं, फ़िर बाण उठाते हैं, बाण छूटता है और हमेशाके अनुभवी धनुर्धारियोंके मस्तकोंको नीचा करता हुआ, एक हज़ार गजपर रक्खे हुए ढोलको बेधकर अदृश्य होजाता है।

चन्द्र—आश्चर्य है!

यशोधरा—और जिस समय सब कलाओंमें अपने प्रतिद्वन्द्वियोंसे विजय पाये हुए कुमार उन्नत मस्तक हो मेरी ओर देखने लगे, उस समय क्या कहूं सखि! उन हमेंशाके वैरागी कुमारका चन्द्रमा सदृश मुख दैदीप्यमान होकर सूर्य्य की तरह चमकने लगा। उनकी छाती आसमानकी तरह चौडी होगई। विजयी प्रेमिकने सगर्व मुझको देखा। आंखोंमें आनन्दकी बिजली खेल रही थी—मुखपर मधुर मुस्कुराहट थिरक रही थी। और चेहरेपर एक प्रकारकी सौम्यता छारही थी।

चन्द्रकला—सखि! इस अद्भुत घटनाने तो मेरे समान हंसोड़ीको भी गंभीर बना दिया है। आश्चर्य्य है!

यशोधरा—यह तो स्वाभाविक ही हैं। मैंने तो उसी समय कह दिया था कि, कुमार पराजित नहीं हो सकते! मैं उस शक्तिको पहचानती हूं।

चन्द्रकला—मेरी प्यारी बहन! वह कौनसी शक्ति है, जिसे तुम पहचानती हो? और जिस शक्तिके बलसे कुमारने सब विद्याओंमें पारंगत महावीरोंको भी हरा दिया हैं!

यशो—चन्द्रकला! वह आत्मिक शक्ति है। यह शक्ति बहुत ही प्रबल है। सूर्य्यकी तरह प्रताप शील होनेपर भी यह चन्द्रमाके समान शीतल है। बज्रसे अधिक कठोर होनेपर भी यह कुसुमसे अधिक कोमल है। यह वह शक्ति है जो शत्रुसे प्रतिहिंसा नही चाहती, बल्कि उसे अपना मित्र बना लेती है। यह वह शक्ति है जो संसारमे खूनकी नदियां नहीं बहाती, बल्कि स्नेहकी गङ्गाका स्रोत सारे विश्वमें बहाती रहती है। जिसने इस शक्तिको प्राप्त कर लिया उसके लिए, कोई कार्य्य असाध्य नहीं रहजाता।

चन्द्र—सच है बहन! यह लो स्वर्णलता आगई।

(स्वर्णलताका प्रवेश)

स्वर्ण—यहां क्या कर रही हो यशोधरा! मैं तो तुम्हें ढूंढते २ हैरान होगई।

यशो—क्यों? हैरान क्यों होगई? ऐसा क्या जरुरी कार्य्य था?

स्वर्ण—ऐलो! कहती हैं हैरान क्यों होगई, हैरान नहीं होजाय तो क्या मिठाई छोड़दे?

यशो—अरी! कौनसी मिठाई! क्या पगली होगई है?

स्वर्ण—अब क्यों न पगली होऊंगी। अब होऊंगी ही, पर मिठाई खानेके पहले नहीं। पहले मिठाई खिलादो।

यशो—अरी! पर साफ़ क्यों नहीं कहती।

स्वर्ण—पहले खिलाओ तो कहूं।

यशो—मर कलमुंही! ले खा। (मिठाई देती है) कह।

स्वर्ण—(सब मिठाई मुंहमे रखकर) ऐं…ऐं… बोला नहीं जाता, खालेने दो। (धीरे २ खाती है)

यशो—अब तो कह।

स्वर्ण—पेट नहीं भरा, और कुछ दो तो कहूं। ए तुम्हें·· तुम्हारा ··एलो अभी तो कही दिया था। और कुछ देदो तो कह दूं।

यशो—मर कलमुंही! और कहांसे लाऊं?

चन्द्र—ले मैं देती हूं और। (उठकर पकड़ लेती है) कह··· नहीं तो ·

स्वर्ण—ये लो! अब आगई सहायता पर दूसरी चण्डिका। अब कहलाए विना न छोड़ेगी। अच्छा तो छोड़ो मैं कहती हूं। (छूटकर) प्यारी यशोधरा! तुम्हारा शीघ्रही सिद्धार्थ कुमारसे मिलना होगा। अब मेषराशिका सूर्य्य होगया है।

परसों तुम्हारे लग्न है। कहो है न गुलाबजामुनसे भी मीठी खबर ?

यशो—हट कलमुंही (एक लड्डू की मारती है)

स्वर्ण—(चन्द्रकलाको लड्डू बतलाती हुई) लेओ ! मुझे तो फ़िर भी मिल गया। तुम ताका करो।

चन्द्र—अच्छा बताती हूं। ठहर···

(स्वर्णलता भाग जाती है) (पटाक्षेप)

तीसरा दृश्य।
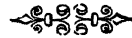
[स्थान—प्रमोद-भवन]

(सिद्धार्थ और यशोधरा)

सिद्धार्थ—यशोधरा।

यशोधरा—प्रणेश्वर।

सिद्धार्थ—क्या सोच रही हो यशोधरा ?

यशोधरा—यही सोच रही हूं हृदयेश्वर ! कि, प्रकृति भी कितनी सुन्दर एवं परोपकारिणी है ? जिस समय गुलाब पर ओस बिन्दु पड़ा हुआ होता है, कमल पर भौंरा बैठा हुआ होता है, कितना सुन्दर मालूम होता है। वृक्षसे लिपटी हुई लता सारे विश्वको प्रेमकी अद्भुत शिक्षा देती रहती है। प्रकृतिका भी संसार पर कितना उपकार है ?

सिद्धार्थ—वास्तवमें प्रकृतिका हम पर बहुत उपकार है।

यशोधरा—क्यों नाथ ! यदि हम मनुष्य न होकर कबूतर कबूतरी होते, और इस अनन्त आकशमें विचरण करते तो क्या होता ?

सिद्धार्थ—बड़ा ही आनन्द होता यशोधरा! इस अनन्त अकाशके नीचे हम अलग अलग वृक्षोंपर बैठकर रूठते, मनाते और आनन्द करते।

यशो०—क्यों नाथ! क्या इस जीवनमें आनन्द नहीं है?

सिद्धार्थ—है! यशोधरा! बहुत आनन्द है। पर मुझे ऐसा मालूम पड़ता है जैसे यह सुख चिरकाल तक स्थायी नहीं रह सकता! न मालूम क्यों यह बात मेरे हृदयपर जम रही है कि, यह सुख क्षण भंगुर है।

यशोधरा—कैसे नाथ?

सिद्धार्थ—यही तो समझमें नहीं आता कि, कैसे? जिस जगतमें प्यारी यशोधरा मौजूद है। जिस जगतपर अनन्त सुख दायिनी प्रकृति माताकी कृपा है! वहांपर क्षण भंगुरता कैसी?

यशोधरा—प्यारे! कभी २ ऐसाही भ्रम हो जाया करता। गायिकाओ!

(गायिकाएं आती है)

यशो—गाओ कोई अच्छा सङ्गीत गाओ।

गायिकाएं—जो आज्ञा। (गाती)

सखीरी! आयो सरस बसन्त!

कुसुम कुसुममें कलियां चटके, चन्द्र चकोर मिलन्त।
कुंज २ में कोकिल कूजे, भौरां कमल रमन्त॥ सखि०॥
मौरनकी खुशबू है छाई, मन पावे सुखनन्त।
लता गले लिपटी वृक्षन सो, कामिनी अपने कन्त॥सखि०॥
मुझ दुखियाको कुछ नहीं सूझत बिरह अन्धेर अनन्त।
बेगि पधारि सम्हारिये मोको, नाहीं होय बस अन्त॥सखि०॥

यशो—(गायिकाओंको एक तरफ बुलाकर) यह क्या गाया

तुमने ? खबरदार जो आगेसे फिर कभी बिरह सूचक संगीत गाया तो । समझीं ? जाओ । (गायिकाएं जाती हैं)

यशोधरा—(सिद्धार्थके पास जाकर) नाथ ! देखिए कैसा सुन्दर चान्द निकल रहा है ?

सिद्धार्थ—तुम्हारे मुखसे तो अधिक सुन्दर नहीं है ।

यशो—कैसी बढ़ियां एवं उज्वल चांदनी छिटक रही है ?

सि—उससे भी अधिक उज्वल तुम्हारे मुख-चन्द्रकी चान्दनी मेरे हृदय जगतमें छिटक रही है यशोधरा !

यशो—यह देखिए इस मन्दिरके सुनहले कलशके साथ चांदनीने मिलकर कैसे अपूर्व सौन्दय्र्य की सृष्टिकर रक्खी है ।

सि—मैं तो केवल तुम्हारा मुख देख रहा हूं यशोधरा ! तुम्हारे मुख सौन्दर्य्यने करुणाके साथ मिलकर जिस अपूर्व सौन्दर्य्य की सृष्टि कर रक्खी है, . वह जगतमें अतुलनीय हैं। यशोधरा ! मुझे तो इस जगतमे तुम्हारेसे अधिक सुन्दर कोई नजर नहीं आता । हे आनन्द दायिनी ! आओ ! और सिद्धार्थ के तप्त हृदयको शान्त करो !

यशो—मेरे प्यारे ! मेरे हृदय निकुञ्जके कोकिल ! मेरे ! नाथ !!! (गलेमें बांहे डाल देती है)

सि—मेरी हृदयश्वरी-मेरे हृदय कुसुमके पराग !! मेरी स्वर्ण प्रतिमा !! पटाक्षेप

चौथा दृश्य

—:०:—

[शुद्धोधनका राज्य दरबार]

(शुद्धोधन मन्त्री और सामन्त)

शु—मेरी मनोकामना पूर्ण हुई । अब कुमार सिद्धार्थ एक

वास्तविक राजकुमारकी भांति दृष्टि गोचर होता हैं। अब वह बैरागी नहीं रहा।

मन्त्री—भगवन! स्मरण रखिए कुमारकी इस अवस्थाको देखकर गर्व न कीजिए। यह सामग्री कुछ भी नहीं है। जिस समय कुमारका मन जरा भी इससे तृप्त हुआ कि इन सारी विलास सामग्रियोंका सुख उनकी दृष्टिसे कपूरकी तरह उड़ जायगा। अनन्त आकाशमे स्वच्छन्द विचरण करनेवाले पक्षी को सोनेका पींजरा भो अच्छा नहीं लगता भगवन्!

शु—तब क्या उपाय किया जाय। जिससे यह पक्षी, इस सोनेके पीजरेमेंसे निकलनेको चेष्टा न करे?

मन्त्रो—यदि उसे यह विश्वास हो जाय कि, यह पींजरा नहीं है, बल्कि सुखोंका बन्धन रहित आगार है। अभी कुमार विलासको सचमुच सुखमय समझ रहे हैं। इसी कारण वे उसमें तल्लीन हैं। यदि उन्हें यह मालूम हो जाय कि, यह सचमुच पींजरा है, तो फिर उसमें बन्द रखना कष्ट साध्य ही नहीं बल्कि असाध्य होगा। इसलिये ऐसा उपाय करना चाहिये, जिससे कुमारको सिवाय बिलासके दूसरी बात सोचनेका अवकाश ही न मिले।

शु—क्या किया जाय?

प्रधान—सैकड़ों गायिकाएं बुलाकर वहां रक्खी जायं। वे तरह २ के हाव भावोंसे कुमारको रिझाया करें। कुछ भी किसीके नृत्यमें त्रुटि हुई, या आयु अधिक हुई कि फौरन उसकी पेंशन कर दी जाय। मल्ल भी रक्खें जाय, जो हमेशा कुश्ती पटेबाजी आदिसे कुमारको रिझाया करें। चित्रकार रक्खें जाय जो तरह २ के उत्तेजक चित्रोंसे कुमारका दिल बहलाया करे।

शु—तुम्हारी बुद्धि भी बड़ी विचक्षण है, प्रधानजी! मैं

तुम्हारा बड़ा आभारी हूं! (ऊपरको देखकर) भगवन्! मुझपर दया करो। मुझे लाख कष्ट देलो, नरक यन्त्रणासे सतालो-प्राण तक ले लो, पर कुमार सिद्धार्थका बाल भी बांका मत करो। राज्य जाय, नाम जाय, जान भी जाय, सब कुछ जाय तो जाय, केवल सिद्धार्थ कुमार रहे, बस मैं प्रसन्न हूं। अच्छा तो प्रधानजी बहुत शीघ्र ही तुम सब बातोंका प्रबन्ध कर दो। इस कार्य्यका भार तुम्हीं पर हैं। (प्रस्थान)

प्रधान—भगवन्! तुमने पिताका हृदय भी किन वस्तुओंसे बनाया है! पितापर हमला करने वाले कृतघ्न पुत्रकी भी छातीमें कोई छुरी घुसेड़नेके लिये तय्यार होता है तो उस छुरीको भी पिता उसी पुत्रकी जान बचानेके लिये यदि हंसते २ अपनी छातीपर झेल लेता है! अद्भुत है! संसारमें सारी चीजोंकी उपमा हैं, पर पिताके हृदय सदृश भी दूसरी कोई वस्तु संसारमें है या नहीं इसमे सन्देह है। (प्रस्थान)

पटाक्षेप

पांचवा दृश्य

—:०:—

[स्थान—इन्द्र सभा]

(इन्द्र बज्र धारण किये हुए प्रधान आसनपर विराजमान है)
(सब देवता लोग अपने २ आसनपर बैठें हैं)

इन्द्र—जगत्में एक नया पाठ शुरू होना चाहता है।

अग्नि—क्या देवराज?

इन्द्र—मनुष्य जातिका उद्धार करनेके हेतु एक महा भाग शीघ्र ही कर्म क्षेत्रमें अवतीर्ण होना चाहते हैं। यह महापुरुष

सृष्टिको एक ऐसा नवीन सन्देश सुनाएंगे जैसा आज तक किसीने नहीं सुनाया है। अत्याचारसे पीड़ित इस दुनियाको शान्तिका, और असमानतासे असम्बन्ध भारतवर्षको साम्यवाद का पवित्र सन्देश सुनाएंगे।

चन्द्र—क्यों देवराज! क्या इस समय इन महापुरूषके उत्पन्न होनेकी कोई आवश्यक्ता थी? आपहीने तो उस दिन कहा था न कि, बिना आवश्यकताके कोई बस्तु ही पैदा नहीं होती। और उसमें भी महापुरूष तो खास समयकी आवश्यक्तासे ही पैदा हुआ करते हैं।

इन्द्र—ओफ़! इस समय क्या कम अत्याचार बढ़े हुए हैं चन्द्रदेव! सारे भारत वर्षमें ब्राह्मण लोग मनमाना जुल्म कर रहे हैं। इस समय तो परलोकका ठेका ही उन लोगोंने अपने हाथमें ले रक्खा हैं। शूद्रोंके प्रति जो २ जुल्म किये जाते हैं उन्हें देखकर कलेजा थर्रा उठता हैं। यदि कोई ब्राह्मण वेद मन्त्रका पाठ कर रहा हो, और दुर्भाग्यवश उधरसे कोई शूद्र निकल जाय, तो उसके कानोंमें कीलें ठोंक दी जाती है। उसके कानोंमें गर्म २ तेल डाल दिया जाता है। और यदि किसीने भूलसे वेदमन्त्रका उच्चारण भी कर दिया तो उसकी जान तक लेली जाती है।

सूर्य्य-अफसोस! भीषण अत्याचार है!

पवन-इन्हें सुन कर तो हृदय रो उठता है।

इन्द्र—मनुष्यके अधिकारको मनुष्य किस दारुणताके साथ कुचल सकता है? मानवी स्वतंत्रता किस प्रकार पैरो तले रौंदी जा सकती है। इसको रोमांच कारी, और हृदय विदारक दृश्य देखना हो तो भारतवर्षमें देखो। परमात्माका नाम लेना भी जहां शूद्रोंके लिए मना है। अपनी आवश्यकताओंको

कम करके सन्यास वृत्ति धारण करना भी जहां शूद्रोंके लिए पाप समझा जाता है। केवल गुलामी ही जहां पर उनका धर्म रह गया है। ब्राह्मणोंकी लातें खाना ही उनका कर्त्तव्य समझा जाता है। उस देशमें भी क्या महापुरुषके जन्मकी आवश्यक्ता नहीं है ?

सूर्य्य—अवश्य हो जाती है देवराज !

इन्द्र—जहांपर यज्ञकी पवित्र वेदी निरपराध पशुओंके खूनसे लाल की जाती है। जहांपर अर्थका अनर्थ करके हजारों गूंगे प्राणी धर्मके नामपर काट दिये जाते हैं। उस देशमें भी क्या मनुष्योंको सत्पथ बतलानेवाले महा पुरुषकी आवश्यक्ता नहीं होती ?

चन्द्र—अवश्य होती है देवराज।

इन्द्र—अफसोस ! मनुष्य भी अधिकार प्राप्त होने पर क्या-का क्या हो जाता है ? हा ! संसारकी सिरमौर कहलानेवाली ब्राह्मण जाति आज कितनी अधोगतिको प्राप्त हो गई है ?

सूर्य्य—इस जातिका पतन न हो तो फिर किसका हो ?

इन्द्र—जातिकाही नहीं देशका कहना चाहिए। जिस देशके अन्तर्गत बसनेवाली जातियां गुलाम बनानेमेंही अपनी उत्कृष्टता समझती हो, उस देशका गुलाम होना जरूरी है। भगवान् ! भारतवर्षके भाग्यमें क्या बदा है ?

चन्द्र—हां तो देवराज ! आपने उस महापुरुषके विषयमें तो कुछ बतलाया ही नहीं।

इन्द्र—क्या बताऊं ! वह महापुरुष अद्वितीय होगा। लेकिन उसके लिए अभी कुछ समयकी आवश्यकता है। संसारके राग-रंगमें लिप्त मनुष्योंने उसके मार्गमें रोड़े अटका रक्खे हैं।

सूर्य्य—पर वह महापुरुष हैं कौन ?

इन्द्र—वे हैं कपिल वस्तुके महाराज शुद्धोधनके कुमार 'सिद्धार्थ"। वह महापुरुष इस समय सांसारिक जालोंमें इस प्रकार फंसाकर रक्खा गया है, जिस प्रकार अनन्त आकाशमें उडनेवाला स्वच्छन्द पक्षी सोनेके पींजरेमें बन्द कर दिया जाय। यदि यह महा पुरुष उचित रास्ते पर लगाया गया होता तो अभी तक बहुत उपकार होता। इसके हृदयमें परोपकारकी बारूद कूट कूट कर भरी हुई है। केवल बत्ती लगानेवालेकी आवश्यकताहै।

चन्द्र—क्या कोई समझानेवाला वहां नहीं पहुंचता?

इन्द्र—वहां बाहरका मनुष्य तो क्या पक्षी भी नहीं जाने पाता। संसारकी कोई भी दुख भरी आह वहां नहीं पहुंच पाती। यदि कुमारको संसारकी सच्ची स्थतिका किसी प्रकार पता लग जाय, तो वह फौरन अपने कर्त्तव्य मार्गपर लग जायगा।

सूर्य्य—क्या हमलोग यह कार्य्य नहीं कर सकते?

इन्द्र—क्यों नही कर सकते? यदि कोई कोशिश करे तो हो सकता है।

चन्द्र—किस प्रकार?

इन्द्र—जिस समय कुमार सो रहे हो, उस समय स्वप्नमें उन्हें दुःखी जगत्‌की एकाध दुःख भरी घटना दिखाई जाय, जिससे उनका हृदय पसीज जाय, मनुष्य जातिका दुख देखकर उनका हृदय रोउठे। बस फिर काम बन जायगा।

चन्द्र—इस कार्य्यको मैं करूंगा।

(पटाक्षेप)

छठवां-दृश्य

—०—

(स्थान—सिद्धार्थकुमारका शयन मन्दिर)

(सिद्धार्थ सोये हुए हैं)

(यशोधरा पैर दबा रही है)

यशो०—(पैर दबाती हुई) मेरे नाथ, सोये हुए हैं। मुखपर एक शान्तिकी रेखा बिराजमान है। कैसा भोला मुख है ? मुस्कुराहट गंगाके जलपर शरद् पोर्णिमाकी चन्द्रिकाकी तरह छाई हुई है। हे निद्रा ! मेरी सहचरी आ ! और मेरे सर्वस्वको अपनी कोमल गोदमे लिटाले। देवि ! मैं तुम्हारा आह्वान करती हूं। तुम आओ, और मेरे स्वामीको शान्तिकी शीतल धारामें स्नान कराओ।

(सिद्धार्थकुमार करवट बदलते हैं और स्वप्नमें कहते हैं)

सि०—ऐ जगत् ! ओ विश्व !! मैं जानता हूं ! मैं समझता हूं !! मैं आता हूं !!!"

(इतना कहते २ उनके मुखपर एक प्रकारका अद्भुत तेजछा-जाता है,)

यशो०—(चौंककर भयके साथ) यह क्या हुआ ? एकदम क्या कहने लग गये ? क्या जानते हैं ? क्या समझते हैं ? और कहां जानेको कहते हैं ? मुखपर एक अपूर्व तेज छा रहा है। आंखोंमें जैसे बिजली चमक रही है। भगवन् ! क्या उत्पात है? मेरे स्वामीकी रक्षा करो। (सिद्धार्थके पास जाकर) भगवन् ! भगवन् ! क्या हुआ उठिए !

(सिद्धार्थ चौंक पड़ते है, और आंखें मसलते हुए)

सि०—क्या हुआ यशोधरा ! तुम अभी तक सोई नहीं। देखो तो कितनी रात चली गई है।

यशो०--आर्य्यपुत्र ! मैं अभी सोनेही वाली थी कि, एकाएक आपके मुंहसे ये शब्द निकले "ऐ विश्व ! ओ जगत् !! मैं जानता हूं ! मैं समझता हूं !! मैं आता हूं !!! प्रभो !" ये वाक्य सुनतेही, मैं तो डरमरी । आप क्या जानते हैं ? क्या समझते हैं ? और कहां जानेकी कहते हैं ?

सि०—(कुछ सोचकर) प्रिये ! तुम शान्त रहो । वह कुछ नहीं केवल स्वप्न था । गायिकाओं !

(गायिकाएं आती हैं ।)

सि०—गाओ ! कोई अच्छा संगीत गाओ । ऐसा संगीत गाओ, जो इस पौर्णिमा की चान्दनीके साथ मिलकर, इस अनन्त आकाशके मैदानमें नृत्य करने लगे । ऐसा संगीत गाओ जो इस नदीके कल २ नादके साथ मिलकर संसारको कर्म्मण्यताका संदेश सुनाय—ऐसा संगीत गाओ जिसे सुनकर स्वार्थी संसार तिलमिला उठे, और परोपकारके प्रकाशमें चला जाय । ऐसा संगीत गाओ, जिसे सुनकर भाई अपने भाईके लिए और मनुष्य मनुष्यत्वके लिए रोने लग जाय—ऐसा संगीत गाओ, जिसे सुनकर स्वार्थ भी परमार्थके लिए आंसू बहाने लगे ! गायिकाओं ! गाओ ।

यशोधरा—प्राणेश्वर । आज आप क्या कह रहे हैं ? कुछ समझमें नहीं आता ?

सिद्धार्थ—कुछ नहीं प्रिये ! कुछ नहीं गायिकाओ !! कोई ऐसा संगीत गाओ, जिसे सुनकर प्यारी यशोधरा रीझ जाय । ऐसा संगीत गाओ, जिसे सुनकर वह अपने आपको भूल जाए, और आनन्दके सागरपर नृत्य करने लगे ।

यशो०—ऐसा महा संगीत गाओ, जिसकी तानमे यह चरा

चर जगत् स्वर्ग और मृत्य सब बिलीन हो जांय। केवल सिद्धार्थ और यशोधरा प्रेम दृष्टिसे एक दूसरेको देखते रहें।

(गायिकाएं गाती हैं)

कौन गा रहा यह सुन्दर गीत।
नदी पारसे सुन पड़ता है कैसा रुचिर सुनीत॥
अरे प्रेमके पथिक! पड़ा क्यो मोह फन्दमे बन्द।
आजा मेरे पास चला आ करूं तुझे स्वच्छन्द॥
जन्म जराका भयन यहां है, है न रोगका शोर।
तोड़ स्वार्थके बन्धन आजा ऐजगके सिरमौर॥
सारी दुनिया बह रही है दुःख नदीकी धार।
त्राहि त्राहि पुकारत तोको बेगि करहू उद्धार॥

(यशोधरा गीत सुनते २ सिद्धार्थकी गोदमे सोजाती हैं। सिद्धार्थ प्रेम भरी दृष्टिसे उसे देखने लगता है, गायिकाएं भी धीरे धीरे जाती हैं)

(एक दम नेपथ्यसे आवाज आती हैं)

" ऐ मायाके पुत्र! यह क्या कर रहे हो? क्यों गुलाबी निद्रामें सोरहे हो? प्यासा जगत् आपकी प्रतीक्षा कर रहा है, उठो, और उसमें शान्तिकी गंगा बहादो। अन्धकारमें ठोकरे खाता हुआ संसार तुम्हारो राह देख रहा है, उठो, और उस पर ज्ञानकी पवित्र चन्द्रिका छिटका दो। यह दुखसे सन्तप्त विश्व करुणाके आंसू बहारहा है, उठो और अपने कोमल हाथोंसे उसके आंसू पोछ दो।

उठो देव! उठो, सुखा भिलाषी मनुष्योको सुखका स्थल बताओ। जरा, व्याधि और मृत्युसे पीड़ित तीनों भुवनोको जीवनका रहस्य समझाओ। सारी मनुष्य जातिके हितकी वेदी पर राज्यका बलिदान कर दो। दुखो जनताके आंसू पोछनेके निमित्त इस

विलास सामग्रीको ठोकर मारदो। जगत्‌में बहुत अत्याचार फैल गया है।

सिद्धार्थ—यह क्या? यह क्या हुआ? मुझे इतना उपदेश किसने दिया? क्या कोई जादू है या देव प्रेरणा? क्या कहा? क्या जगत् दुखी है? क्या दुख भी कोई पदार्थ है। मुझे तो कोई दुख नहीं देख पड़ता, प्यारी यशोधराको भी सब तरहका सुख है। लेकिन जो यह कहा उसमे भी कुछ सत्य होना चाहिए। (कुछ सोच कर) यदि यह सत्य नहीं है ता फिर ये गायिकाएं नौकर क्यों, और मैं स्वामी क्यों? यदि उनका कहना झूठ है तो फिर मैं आज़ाद क्यो और ये गुलाम क्यों? कुछ दुख जरूर होना चहिए, और उसकी खोज करना जरूरी है।

जरूर करूंगा! उस दुःखकी खोज करनेके लिए जरूर संसारमे घूमूगां। और देखूंगा कि, दुख भी क्या कोई वस्तु है? (कुछ सोचकर फिर)

नहीं जाऊंगा! जरूर जाऊंगा!! दुनियामे जाऊंगा, यह देखनेके लिए जाऊंगा कि, दुख भी कोई वस्तु है या नही? और यदि है तो उसके दूर करनेके उपाय???

(पटाक्षेप)

सातवां-दृश्य
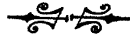
(स्थान-राजा शुद्धोधनका दरबार)

(शुद्धोधन, मंत्री, और अन्य सामन्त)

शु—प्रधानजी! इतने उपाय करने पर भी पूरी सफ़लता नहीं होती। कल रातको भी सुना है कि, कुमार एकाएक चौंक

पड़े, और कहने लगे—"ऐ जगत्! ओ विश्व! मैं जानता हूं। मैं समझता हूं!! मैं आता हूं!!!" लक्षण बिलकुल ख़राब मालूम होते हैं। भगवन्! मेरे कुमारको बचालो।

(एक दासीका प्रवेश और अभिवादन करना)

शु—क्यों सुमित्रा! कैसे आई?

सु—भगवन्! कुमारने कहला भिजवाया है कि, "मैं एक दिन नगरकी शोभा देखना चाहता हूं। राजपुत्र होनेपर भी खेद है कि, मैं अभीतक नगरकी स्थिति नहीं देख सका। अब मैं चाहता हूं कि, नगरमें जाकर प्रजा जनोंकी परिस्थितिको देखूं।"

शु—(सोचकर) कुमारको मेरी ओरसे कहना कि, नगरमें देखने लायक कुछ भी नहीं है। सब प्रजा जन आनन्द पूर्वक हैं। महाराज उनका पूरीतौरसे पालन करते हैं। वे प्रमोद भवनमें आनन्द पूर्वक रहें।

(सुमित्राका प्रस्थान)

शु—प्रधानजी! अब क्या किया जाय? कुमारका बड़ा हठी स्वभाव है। जो बात मुंहसे कहदेते हैं उसे किये बिना नहीं रहते। अब क्या किया जाय? उन्हें किस प्रकार समझावें? यदि उन्होंने नहीं माना, और नगर देखने चले ही गये तब तो कुशल नहीं है। उस दृश्यसे कुमार अवश्य उदासीन हो जांएगे।

(सुमित्राका पुनः प्रवेश)

शु—क्या हुआ सुमित्रा! कुमारने क्या उत्तर दिया?

सु—भगवन्! उन्होंने बड़ी ही विनम्रता पूर्वक कहलाया है कि एक दिन पिताजीका कार्य्य मुझे सम्हालना ही पड़ेगा। यदि नगरके विषयमें बिलकुल ही मैं अनभिज्ञ रहूंगा, तो कैसे उस कार्य्यको सम्पादित कर सकूंगा? इसलिये भविष्यमें कार्य

को सुचारू रूपसे सम्पादित करनेके लिए—नगरकी परिस्थिति देखना आवश्यक है। इसके लिये पिताजी मुझे क्यों रोकते हैं? उन्हें बहुत ही विनम्रतासे कहना कि, मैं शीघ्र ही लौट आऊंगा। वे चिन्ता न करें।

शु—अस्तु। यदि कुमारकी यही इच्छा है तो कल उन्हें परिभ्रमण करनेके लिये नगरमें भेज दिया जायगा।

सु—जो आज्ञा। (प्रस्थान)

शु—विपत्तिपर विपत्ति आती जा रही है। किस कठिनाईके साथ कुमारको राह लगाया—किस कठिनाईसे उसका विवाह किया—किस कठिनाईसे उसे संसारमें आसक्त किया? पर वे सब प्रयत्न अब एक बारगी ही बिफल होना चाहते हैं। परमात्मन्! मेरे भाग्यमें भी क्या बदा हैं? (आंसू पोछते हैं)

प्रधान—भगवन्! इतने दुःखी क्यों होते हैं? कोशिश करना अपने हाथ हैं, फल इश्वराधीन है। कुमारको संसारमें पूर्ण तौरसे आसक्त करनेके लिये कठिनसे कठिन प्रयत्न हम करें, यदि फिर भी ईश्वरकी यही इच्छा है तो अपना चारा ही क्या है? परमात्माका मंगल नियम पूरा हो। उसकी इच्छा खराब कामके लिये नहीं होती।

शु—इस बातको मैं नहीं मानता मन्त्रीजी! कि परमात्माके सभी कार्य्य अच्छे होते है? भगवन्का कोप महामारीके रूप मे इस सृष्टिपर पड़ता है, वह महामारी केवल पापियों और अत्याचारियोंको ही नहीं ले जाती, वलिक उसमें कई अच्छे २ रत्न भी चल बसते हैं। भूकम्प केवल पापियोके ही घरोंको नष्ट नहीं करता, बडे २ पुण्यात्मा और भगवद्भक्त भी उससे नेस्तनाबूद हो जाते हैं।

प्रधान—उसका भी कोई पवित्र ही उद्देश्य होता है।

शु—क्या पवित्र उद्देश्य होता है ? अब देखो न संसारमें कई ऐसे पिता है, जिनके एकसे अधिक पुत्र है ? यदि परमात्मा को कार्य्य ही लेना है तो उनसे क्यों नहीं लेता ? क्या शुद्धोधनके इकलौते पुत्रको छीनकर ही उसका मङ्गल नियम पूरा होगा ?

प्रधान—भगवन्! आतुर मत हूजिए। जरा सोचिए, किसी भी महाकार्य्यको सम्पन्न करनेके लिये, एक विभूतिकी आवश्यक्ता हुआ करती है। किसी एक निश्चित महापुरुषमें ही वह विभूति होती है। ज़िसके तेजके कारण सारा संसार उसके पैरोंपर लेटने लग जाता है। अत्याचार उस विभूतिके तेजसे गलकर नेस्तना बूद हो जाता है? उसके तेजके कारण पापके सिरसे मुकुट गिर जाता है—स्वार्थके हाथसे राजदण्ड छूट ज़ाता है। धर्म उस विभूतिके मस्तकपर पवित्रताका मुकुट मण्डित करता है। उसी विभूतिकी संसारको आवश्यकता हुआ करती है। ग्राम २ मे नदियां मौजूद है, मगर फ़िर भी मनुष्य अनेक कष्ट सहकर गङ्गा स्नानको क्यों जाता है? स्थान २में देवस्थान होनेपर भी मनुष्य हरिद्वार क्यों जाता है और हृदय २में परमात्मा का वास होनेपर भी मनुष्य मन्दिरकी सीढ़ियें क्यों चढ़ता है ? इसका एक मात्र कारण वही विभूति हैं। उस विभूतिको क्या मनुष्यको, क्या प्रकृतिको और क्या परमेश्वरको सभीको आव— श्यकता रहती हैं।

शु—मैं कुछ सुनना नहीं चाहता। मैं केवल कुमारको चाहता हूं। उसे किसी प्रकार बचाओ।

मं—भगवन्! मैं भी तो वही कह रहा हूं कि, अपने प्रयत्नमें किसी प्रकारकी त्रुटि न रहे। मुझे तो केवल एक उपाय दीखता है। पर उसमें कहां तक सफलता होगी यह मैं नहीं कह सक्ता।

शु—क्या ?

मन्त्री—सारे नगरमें ढिंढ़ोरा पिटवा दिया जाय कि, कल कुमार नगर भ्रमणको जावेंगे। इसलिये सब लोग अपने २ घरोंको सजावें। नगर ऐसा कर दिया जाय जिसे देखकर देवता लोग भी यहांके लिये तरसने लगे। सौभाग्यवती स्त्रियें स्थान २ पर पूजा की सामग्री लेकर खड़ी रहें। मतलब यह कि कुमारको यह मालूम न हो सके कि दुख भी कोई पदार्थ है।

शु—तथास्तु!

(पटाक्षेप)

आठवां दृश्य

—:०:—

(स्थान—कपिलवस्तु नगरीका बाजार)

(नगरी चारों ओरसे सुसज्जित है। भिश्ती लोग पानी छिड़क रहे हैं। स्त्रियां पूजाके पात्र लिये खड़ीं हैं।)

(धीरे २ कुमार एक सुसज्जित रथपर प्रवेश करते हैं, लोगों का समुदाय उनकी जय जयकार बोलता है, स्त्रियें पूजा करती हैं, कुमार उनके पात्रोंमे मुहरे डालते हैं)

सि० कु०—अहा! कितना आनन्द है? चारो ओर हर्षके फव्वारे छूट रहे हैं। सब लोग अपने आनन्दमें मग्न हैं। अहा! ये लोग मेरा कितना सत्कार कर रहे हैं? मैंने तो इनका कभी कोई उपकार नहीं किया, फिर ये मेरा सत्कार क्यों कर रहे हैं? ऐसी दुनियाको कौन स्वार्थी कह सकता है? छन्दक! रथको आगे बढ़ाओ।

(सारथि रथको आगे बढ़ाता है। उसके साथ ही साथ जय जयकारका कोलाहल करता हुआ जन समुदाय भी आगे

बढ़ता है। इतनेमें एक सत्तर वर्षका जर्जर बुड्ढा भीड़के बीचमें आ जाता है)

वृद्ध—हे भगवन्! मरनेके लिये तो सारी दुनिया पड़ी हुई है। मुझे तो कुछ दिन और जीने दे! अरे साधु पुरूषों! मुझे कुछ भिक्षा दो। मेरे जीवनकी रक्षा करो। मैं मरना नहीं चाहता। कुछ दिन दुनियामें और रहने दो (कफ गिरता है)

कुछ लोग—हट बुड्ढे! हट। दीखता नहीं है। कुमार पधार रहे हैं।

कुमार—(सारथीसे) यह मनुष्य कौन है? ऐसे फटे हुए कपड़े क्यों पहने हुए हैं? इसके चेहरेपर ये झुर्रियें क्यो पड़ गई हैं? क्या इस अवस्थामे भी मनुष्य जन्म लेते हैं?

छन्दक—नहीं कुमार! मनुष्य ऐसी अवस्थामें जन्म नहीं लेता। लेकिन बहुत अवस्था हो जानेपर सभी मनुष्योंकी ऐसी दशा हो जाती है। पचास वर्षके पहले यह मनुष्य भी एक सुन्दर और बलिष्ट जवान था। मगर आज इसकी यह दशा हो गई है!

सि०-कु०—तो क्या सभी मनुष्योंकी ऐसी दशा हो जाया करती है? क्या मै भी अधिक जीवित रहूं तो मेरी भी ऐसी ही दशा हो जाय? प्रियतमा यशोधराकी भी ऐसी अवस्था हो सकती है?

छन्दक-कुमार! समस्त प्रकृति चंचल है, इसीलिये तो इसका नाम जगत् है। इस चक्रव्यूहसे बचकर कोई खाली नहीं जा सकता। चाहे राजा हो चाहे रंक, चाहे अमीर हो चाहे गरीब। लेकिन आज आप इस प्रकारकी बातें क्यों कर रहे है?

सि० कु०—अच्छा जरा उस वृद्धको बुलाओ तो।

छन्दक—क्या प्रयोजन है कुमार?

सि० कु०—प्रश्न मत करो ! पहले उसे बुलाओ।

छन्दक—ओ बुड्ढे ! इधर आ कुमार बुलाते हैं।

(बुड्ढा आता है, और कुमारको अभिवादन करता है)

कु०—क्यों भाई ! तुम्हारी ऐसी अवस्था कैसे हो गई ? तुम क्या चाहते हो ?

वृ—कुमार। अब मेरी बृद्धावस्था आ गई है। इसलिये ऐसी दशा हो रही है। कुछ बरसों पहले मैं भी आप हीके समान सुन्दर नवयुवक था। पर ज्यों २ आयु बढती जाती है, त्यों २ कालदेवका निमंत्रण मेरी ओर अग्रसर होता जा रहा है। मैं ज्यों २ उससे दूर भागना चाहता हूं, त्यों २ वह मेरे समीप आता जा रहा हैं। मैं वहुत ही मना करता हूं, लेकिन बुढ़ापा नहीं मानता। कुमार ! मेरी जीनेकी साध अभी पूरी नहीं हुई। अभी भी आशाका रङ्गीन चश्मा मेरी चश्मोंपर चढ़ा हुआ है। अभी भी यह पृथ्वी मुझे सुन्दर मालूम होती है। इसीलिये इतने कष्ट झेलकर भी मैं जीना चाहता हूं।

कुमार—तुम्हारे स्त्री पुत्र भी हैं ?

वृ—कुमार ! स्त्री तो चल बसी। पुत्र चार हैं, लेकिन वे अपने वृद्ध पिताका मुख भी नहीं देखना चाहते। वे कहते हैं कि, इस खूसटकी सेवा हमसे नहीं होतो। कुमार ! बुड्ढेको कोई नहीं चाहता। मेरे पुत्र जिन्हें कितनी ही कठिनाईयोंसे मैंने पाल पोसकर बड़े किये हैं। मुझे घरसे निकालनेकी चेष्टा कर रहें है। वे हमेशा अपनी स्त्रियोंके साथ गुलछर्रे उड़ाते हैं, मगर कभी अपने बुड्ढे बापको रूखा सूखा अन्न भी खानेको नहीं देते। इसलिये मुझे भिक्षासे निर्वाह करना पड़ता है। फिर भी जीवनकी साध नहीं मिटती है। इच्छा होती हैं कि, एक बार फिरसे जवान बनूं, और इस हरी भरी पृथ्वीपर

आनन्द करूं। इसीलिये कहता हूं कि, "भगवन्! मरनेको तो सारा संसार पड़ा है, मुझे तो कुछ दिन और जीने दे।

(कुमारकी आंखोंसे आंसू टपकने लग जाते है। वे उसे एक मुहर देकर बिदा करते हैं)

कुमार—ओफ! बिचारा कितना दुःखी हैं? इसकी स्त्री इसे छोड़कर चल बसी। क्या प्यारी यशोधरा भी मुझे छोड़ कर चली जा सकती है? इसके पुत्रोंने इसे निकाल दिया है क्या प्राण प्रिय राहुल भी मेरे साथ ऐसा कर सकता है? क्या आश्चर्य! ओफ अब समझा। छन्दक! अब शीघ्रता पूर्वक रथको मोड़ो।

(एक ओरसे—"अरे दयालु पुरुषो! मुझे बचाओ। मैं मरा जा रहा हूं।")

कुमार—छन्दक! यह करुण क्रन्दन कहांसे सुनाई पड़ रहा है? शीघ्रता पूर्वक रथको वहां ले चलो।

(छन्दक रथको मोड़कर एक ऐसे मनुष्यके पास ले जाता हैं, जो दुखसे आर्त्तनाद कर रहा है)

कु०—ओफ! इसकी कैसी बुरी हालत हो रही है? सारे शरीरपर सफेद २ घाव पड़े हुए हैं। उन घावोंके छिल जानेसे इसे असह्य कष्ट हो रहा हैं। कितने मनुष्य इसके आस पास खडे हैं, मगर कोई उसके पास नहीं जाता। कोई उसकी मददके लिए हाथ नहीं वढ़ाता। ओफ़! मनुष्य भी कितना स्वार्थी होता है?

(आंसू बहने लगते हैं)

(उसके पश्चात कुमार उसके पास जाते हैं और उसका सिर अपनी गोदमें ले लेते हैं)

छन्दक—कुमार! कुमार! यह क्या कर रहे हैं। हट जाइए वहांसे।

कुमार—क्यों छन्दक ! क्या बात है ?

छन्दक—कुमार ! इसे मृगीका रोग हो गया है । इसके हृदयका स्पन्दन मन्द हो गया है। इसके रक्तकी गति धीमी पड़ गई है। इसके शरीरकी संधियां टूट गई हैं। दुष्ट बीमारीके कारण यह रूप एवं शक्तिसे हीन हो गया है। कुछ ही समयमें यह मर जायगा। आप इससे दूर हट जाइए, नहीं तो इसका रोग आपको चिपट जायगा।

कुमार—छन्दक ! क्या यह रोग मुझे भी चिपक सकता है ? क्या प्यारी यशोधरा भी इसका शिकार हो सकती है ?

छन्दक—कुमार ! प्रकृतिका नियम बड़ा ही कठोर होता है। थोड़ा सा भी उसके विरुद्ध कोई चला जाय तो उसका दण्ड उसे अवश्य ही भोगना पड़ता है। फिर चाहे वह राजा हो, चाहे रंक। यह नियम प्रलयसे भी अधिक भयानक, भूकंपसे भी अधिक विनाशक, और दुर्भिक्षसे भी अधिक निर्दयी होता है।

कुमार-क्या मनुष्योंको हमेशा ही रोगका भय बना रहता है ?

छन्दक—कुमार ! सचमुच ही मनुष्य हमेशा रोगके साम्राज्यमे रहता है। कोई नहीं कह सकता कि, वह कब उसे कष्ट देने लग जाय। कोई नहीं कह सकता कि, संध्याको सोया हुआ पूर्ण निरोग मनुष्य सबेरे उसी हालतमें उठ सकेगा।

कुमार—(रोगीसे) क्यों भाई ! क्या तुम जानते थे कि, यह रोग कभी तुमपर आक्रमण करेगा ?

रोगी—दयालुकुमार ! मेरी कहानी तुम मत पूछो उसे सुनकर तुम्हें बड़ा दुःख होगा।

कुमा०—नहीं मैं उसे सुनना चाहता हूं। तुम कहो।

रो०—कुमार ! क्या कहूं ? मैं स्वप्नमें भी नहीं जानता था कि ऐसा दुःखदाई रोग आकर मुझे सतावेगा। हजारों रोगी

मनुष्य हाय-हाय करते हुए मेरे सामनेसे निकल जाते थे, मगर उन्हें देखकर भी मुझे बिलकुल दुख न होता था, मैं समझता था कि, मैं तो हमेंशा निरोग रहूंगा। इसीसे मैंने मृत्युके लिए कुछ भी तैय्यारी नहीं की। इसी बीचमें एक असावधान सैनिक पर किये जानेवाले आक्रमणकी तरह दुष्ट मृगीने मुझे आ दबाया। अब मैं बिना किसी तैय्यारीके यमराजके पास चला जाऊंगा। हाय! (रोने लगता है)

(इसी समय पासहीसे कुछ लोग "राम २ सत्य है, सत्य बोले गत है" कहते हुए एक मुर्दे को लेकर निकलते हैं जिसे सुनकर वह रोगी चिल्लाता है)

रोगी—यमराज! मैं भी आता हूं। जल्दी मत करो। भ... ग.. व...न् (मृत्यु)

सि०—यह क्या हो गया? अरे! क्या मनुष्य जातिको इस भयंकर दुःखसे बचानेका कोई उपाय नहीं है? (आंसू बहते हैं)

(इतनेहीमे उसके सम्बन्धी आकर, शवको उठा ले जाते हैं। कुमारका रथ आगे बढता है। और रास्तेमें एक सन्यासी मिलता है)

सि०—छन्दक! यह कौन है?

छ०—कुमार! यह सन्यासी है। इसने सब प्रकारकी इच्छाओंको त्याग दिया है। सब विलास सामग्रीको लात मार दी है। इसे जीवन और मृत्युका कुछ भी डर नहीं है। देखिए, कितनी शान्त मूर्ति है? (सन्यासी एक झाड़के नीचे बैठकर समाधिस्थ हो जाता है)

सि०—वास्तवमें यह सुखी है। छन्दक! अब एकदम प्रमोद भवनको चलो!

छन्दक—जा आज्ञा। (रथ जाता है) (पटाक्षेप)

नौवां-दृश्य
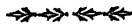
(स्थान—प्रमोद भवन)

(यशोधरा)

यशो०—आज प्राणेश्वर नगर भ्रमण करनेके लिए गये हुए हैं। न मालूम परसों रात्रिसे जब वे एकाएक चौंक पड़े थे, उनका चित्त क्यों अस्थिर रहता है? कुछ समझ नहीं पड़ता, देखती हूं, जैसे एक अलक्ष्य चिन्ता उनके चित्तपर घेरा डाले हुए खड़ी है। देखती हूं, जैसे लहरें लेते हुए समुद्रकी तरह उनके मनमें एकके बाद दूसरी लहर उठती हुई चली जारही है। देखती हूं, जैसे किसी बड़े भारी दुखान्त नाटकको देखनेवाले भग्न हृदय मनुष्यकी तरह उनका चित्त विकृत हो रहा है। भगवन्! क्या बात है?

(चन्द्रकलाका प्रवेश)

चन्द्र०—यशोधरा! क्या सोच रही हो? सखि! अब तो चन्द्रकलाको बिलकुल भूल गई सो मालूम होती हो। भला इस अवस्थाको पाकर कौन किसकी याद रख सकता है?

यशो०—सखि! तुम्हें कैसे भूल सकती हूं? तुम मेरी सुखकी साथिन और दुःखकी सान्त्वना हो! तुम मेरी चिन्ताकी विस्मृति और आनन्दको गरिमा हो। जब मैं चिन्ताके अथाह सागरमें गोते खाने लगती हूं, तभी तुम माताके आशीर्वादकी तरह आकर मुझे बचा लेती हो। तुम्हें कैसे भूल सकती हूं चन्द्रकला!

चन्द्र०—बस बहुत हो चुका, तुम तो जैसे उपमाओंकी

"फूलझड़ी" बन गई। अब यह तो बताओ कि, आज इतनी चिन्तातुर क्यों देख पड़ती हो? क्या बारह घण्टेका वियोग भी सहन नहीं होता?

यशो०—नहीं सखि! आज चिन्तातुर होनेका दूसराही कारण है! वह चिन्ता ऐसी वैसी नहीं जीवन मरणका प्रश्न है।

चन्द्र०—क्यापर कहो न?

यशो०—कल रातको जब आर्य्य पुत्र सो रहे थे, और मैं उनके पैर दबा रही थी, कि इतनेहीमें वे स्वप्न वश चौंक पड़े और कहने लगे—"ऐ जगत्! ओ विश्व!! मैं जानता हूं! मैं समझता हूं! मैं आता हूं।" बस उसी घड़ीसे उनका चित्त विकृत रहता है। आज वे नगर भ्रमणको गये हैं। न मालूम उनको क्या हो गया है?

चन्द्र०—(स्वगत) लक्षण अच्छे नहीं देख पड़ते, परमात्मा तुम्हारे स्वामीको रक्षा करे। (प्रगट) कुछ नहीं बहन! वह केवल भ्रम है। मैं एक गाना गाऊं, सुनोगी?

यशो०—हां गाओ।

चन्द्र०—सुनो आ...आ...आ .आ.. आ।

यशो०—गाओ न। दिल्लगी करती हो।

चन्द्र०—यह लो सब मिट्टी कर दिया। तानही बिखेर दी। (गाती है) आ...आ...

मन कहा मान तू मेरा।
मत प्रेमके फन्दे पड़तू यह है जाल घनेरा॥
प्रेमको पन्थ कठोर महा है इससे नहीं निस्तार।
या पर चलनो सहज नहीं है यह खडगकी धार॥
एक बेर घुसनेके पीछे होता नहीं निस्तार।
इससे कहा मानकर मेरा तोड़ प्रेमकी पाश॥

यशो०—सखि! तुम भी इस स्वप्नका कुछ अर्थ समझीं?

चन्द्र०—एलो! मैंने इतना गाया, उस पर तो बिलकुल ध्यानही नहीं है। और बीचहीमें दूसरी बात छेड़दी।

यशो०—सखि! इस समय मेरा चित्त बहुतही व्याकुल हो रहा है मुझे इस समय कुछ अच्छा नहीं लगता।

चन्द्र०—(स्वगत) हाय सखि! यदि प्राण देकर भी तुम्हारे चित्तको शान्त कर सकती! (प्रगट) सोतो होवेगाही। ऐसे समयमें तो सभीका चित्त व्याकुल होता है। उसके लिए तान बिखेरनेकी क्या आवश्यकता थी?

यशो०—दिल्लगी छोड़ दो चन्द्रकला! क्या तुम मुझे नहीं चाहती? क्या मेरा दुख तुम्हारे हृदयपर चोट नहीं पहुंचाता?

चन्द्र०—कहां? नहीं तो बिलकुल नहीं। कहां पहुंचाता है चोट? मुझे तो कहीं नहीं लगी। (सब देखकर) कहां? बिलकुल ठीक तो है।

यशो०—बहन! दिल्लगी छोड़कर कोई ऐसा उपाय बताओ जिससे व्यग्र चित्तको कुछ शान्ति मिले।

(एक सन्यासिनीका प्रवेश)

सन्या०—मैं बतलाती हूं। अचूक उपाय बतलाती हूं। यशोधरा! यदि तुम सच्ची शान्तिका दिव्य सुख प्राप्त करना चाहती हो, यदि तुम देव दुर्लभ आनन्दमें गोते लगाना चाहती हो, तो कुछ त्याग करो। अपने पतिको अपने क्षुद्र बन्धनमें बन्द न रखकर सारे जगत्के उद्धारके निमित्त छोड़ दो। सारे विश्वके कल्याणकी वेदीपर अपने स्वामीको भेंट कर दो। सारी मनुष्य जाति दुखसे चिल्ला रही है, उसका दुख दूर करनेके निमित्त अपने पतिको सहर्ष विदा दे दो। देवि! अखिल विश्वके लिए अपने पत्नीत्वका दान करो, और उसके बदलेमें मातृत्वका उप-

हार ग्रहण करो। सिद्धार्थको छोड़ो, और उसके बदलेमें सारे विश्वकी माता बन बैठो। बहन! तुम्हारे इस त्यागको देखकर सारा विश्व मां ! मां! कहकर तुम्हारे चरणों पर लेटने लग जायगा। फिर देखना उसमें कितना आनन्द है। (चली जाती है) (दोनों हतचेत हो जाती हैं)

(पटाक्षेप)

दूसरा अंक समाप्त

तीसरा-अंक

प्रथम-दृश्य
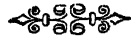
(स्थान—प्रमोद भवन)

(सिद्धार्थकुमार)

सि०कु०—सुख, सुख करता हुआ मनुष्य निरंतर सुखकी खोजमें भटका करता है! मगर उसे सुख कहीं नहीं मिलता। सारी दुनिया दुखके एक अलक्ष्य हाहाकारसे भरी हुई है। सुख केवल इन्द्रजाल है। जहां पर यौवनके पश्चात् वृद्धावस्थाका डर बना हुआ है, आरोग्यको व्याधिका भय है, स्मृद्धिके पीछे दरिद्रता छिपी हुई है। जीवनके साथ मृत्युकी डोर बंधी हुई है। प्रेममें वियोग है। वहां सुख कैसे हो सकता है? जहां स्नेहपर विश्वास घातका साम्राज्य है। उपकार पर कृतघ्नता राज्य करती है, इमानद्दारी मक्कारीकी गुलाम है। वहां सुख कैसे होसकता है? हाय! इस संसारमे मनुष्यकी एक भी इच्छा पूर्ण नहीं हो पाती सुन्दर पुष्प हाथमें लेतेही कुम्हला जाता है, इन्द्र धनुष देखतेही देखते विलीन हो जाता है। बिजली चमककर वहीं लुप्त हो जाती है। सुन्दरी स्त्री व्यभिचारिणी निकल जाती है, मित्र कृतघ्न हो जाता है! इसी जगतमे मनुष्य इतनी ममता रखता है।

क्या इसका कोई उपाय नहीं? क्या यह संसार सुखमय नहीं हो सकता? ऐ दुखी जगत्! ऐ मेंरे संसारी बन्धुओं!! मैं

जानता हूं ! मैं समझता हूं !! मैं आता हूं !!! तुम्हारा प्रत्येक दुख मेरा दुख है, और उसे दूर करना मेरा कर्त्तव्य है !

(धीरे २ म्लान मुख यशोधरा प्रवेश करती)

यशो०—नाथ ! आजकल आप ऐसे उन्मने क्यों रहते हैं ? क्या आपको मुझ दासीसे विश्रान्ति नहीं मिलती ?

सि०—विश्रान्ति ! यशोधरा ! तुम्हारी मौजूदगीमे मुझे विश्रान्तिके सिवाय मिल ही क्या सकता हैं। पर जब मैं यह सोचता हूं कि, तुम्हारा यह अङ्ग लालित्य एक दिन नष्ट हो जाने वाला हैं। यह क्षीण कटि एक दिन झुक जानेवाली है। यह फूल सा मुख एक दिन कुम्हला जानेवाला है। तब हृदयमें एक प्रकारका आंतक छा जाता है। उस दूर भविष्यको देखकर मेरा हृदय टूक २ हुआ जा रहा है। मैं सोचता हूं कि, क्या वृद्धावस्था और मृत्युको रोकनेवाला एक भी उपाय इस पृथ्वी पर नहीं हैं ? जो संसार इतने सुखोंका भण्डार है, उसमें क्या इसकी कोई भी राम बाण दवा नहीं है ?

यशो०—नाथ ! कुछ भी समझ नहीं पड़ता। आज कल आप न मालूम क्या २ बातें करते हैं।

सिद्धार्थ—अच्छा है यशोधरा ! इसे समझनेकी कभी चेष्टा भी मत करना। नहीं तो सिद्धार्थकी तरह तुम्हारा हृदय भी व्याकुल हो जायगा। इन बातोंको न समझना ही अच्छा है। प्रिये ! अब तुम आराम करो। मुझे अपना लक्ष्य ढूंढ़ने दो। जिससे मैं संसारसे वृद्धावस्था और मृत्युका नाश करनेवाली औषधिका आविष्कार कर सकूं।

(यशोधरा निराश होकर सो जाती है)

सि०कु—कितनी भोली बालिका है। बेचारी मुग्धा कुछ नहीं समझती। केवल मुझे जानती है।

यशो०—(स्वप्नमें चिल्लाती है) प्राण नाथ! रक्षा करो। रक्षा करो !! हे मेरे बसन्त! मेरा त्याग मत करो।

(रोने लगती है)

सि०—(दुखित हृदयसे) यशोधरा! क्या हुआ? तुम इतनी दुखित क्यों हो रही हो?

यशो०—देव! अभी मैं सुखपूर्वक सोई हुई थी कि, इतने हीमें मुझे तीन भयानक स्वप्न दिखाई दिये। उन्हें स्मरण कर अब भी मेरा हृदय भयसे कांप रहा है।

सि—क्या मैं भी उन्हें सुन सकता हूं?

यशो०—सुनिए! मैंने पहले एक बड़ा बैल देखा, उसके मस्तक पर एक बहुत ही चमकीला रत्न चमक रहा था। वह नगरके रास्तेसे किलेकी ओर जा रहा था। एकाएक आकाश मेंसे किसीने कहा कि, इसे शीघ्र रोको। नहीं तो इसके साथ सारे नगरकी शोभा चली जायगी। सब लोग उसे रोकनेकी कोशिश करने लगे, मगर वह किसीसे नहीं रुका। यह देखकर मैं जोरसे चिल्लाई, और अपना हाथ उसकी गर्दन पर रक्खा, एवं नौकरोंसे दरवाजा बन्द करनेको कहा। मगर वह वृषभ धीरे से मेरे हाथको छुड़ाकर, दरवाजा तोड़ता हुआ चला गया!

सि०—दूसरा स्वप्न क्या देखा प्रिये?

यशो०—दूसरे स्वप्नमें मैने देखा कि, चमकीली आंखों वाले चार सुन्दर देव, दूसरे बहुतसे देवोंके साथ इस नगरमें आये। और उन्होने नगरकी पुरानी पताकाओंको उतार कर नई पताका स्थापन की। उसका कपड़ा नाना प्रकारके रङ्गोंसे रङ्गा हुआ था। और अनेक प्रकारके जवाहिरातोंसे जड़ा हुआ था। वायुके साथ उनका संघर्ष होनेसे कुछ शब्द निकलते थे जिनको सुनकर जनता बहुत आनन्द पा रही थी, इतने हीमें

पूर्वकी ओरसे पवन चला। जिससे वह पताका चारों ओर उड़ने लगी। और आकाशसे एक विचित्र प्रकारके फूलोंकी वृष्टि हुई। वैसे फूल मैंने कभी नहीं देखें।

सिद्धार्थ-(हर्षित होकर) यह तो बहुत ही मङ्गल दायक स्वप्न है।

यशो०—भगवन्! लेकिन इस स्वप्नका अन्तिम भाग बहुत ही भयानक है। एकाएक "समय समीप है! समय समीप है!!" ये शब्द मेरे कानोंमें सुनाई पड़े, और तुरन्त ही मैंने तीसरा स्वप्न देखा। मैं तुम्हें ढूंढ़ने लगी, पर बिछौना खाली पड़ा था, शाल अलग पड़ी हुई थी। और सारी वस्तुएं जहांकी तहां रक्खी हुई थी। हे मेरे प्राणेश्वर! हे मेरे प्रकाश!! तुम्हें न पाकर मैं उठ खड़ी हुई। देखती क्या हूं कि, मेरे गलेका रत्नहार सांप हो गया है। पैरके जेवर पैरोंसे निकल गये हैं। सोनेकी बंगड़ियें अलग हो गई हैं। यह पलग टूट कर जमीन पर गिर गया है। इतने हीमें फिर मुझे सुनाई पड़ा।

समय समीप है! समीप समय है!!

हे नाथ! यह आवाज अभीतक मेरे हृदयमें गूंज रही है। इस स्वप्नका क्या फल है? मुझे डर लगता हैं कि, या तो मेरे प्राण तनसे अलग होंगे, या प्राणोंके प्राण-आपसे-वियोग होगा।

(रोने लगती है)

सि०—शान्त हो! मेरी माधुरी! शान्त हो! इसमें चिन्ता करनेका कोई कारण नहीं है। सम्भव है तेरे ये स्वप्न भविष्य में होनेवाली घटनाओंके सूचक हो। सम्भव है देवताओंके आसन भी विचलित हो गये हों। संभव है सारा विश्व सहायताके लिए याचना कर रहा हो। और संभव है तुझ पर या मुझ पर कोई आकस्मिक विपत्ति आना चाहती हो। पर तो भी यह बात तू हमेशा स्मरण रखना कि, मैं तुझे चाहता था चाहता हूं।

और चाहूंगा। इस दुःखी जगत्को बचानेका उपाय ढूंढ़ निकालनेके लिए मैं महीनोंसे कोशिश कर रहा हूं। जिन प्राणियोंका सुख दुख मेरा सुख दुख नही है, ऐसे अनजान प्राणियोंके दुख दूर करनेके लिए भी जब मेरा हृदय तरसता है, तब जो मेरे प्राणो का प्राण है, जो मेरे हृदय निकुञ्जका सुन्दर गुलाब है, जो मेरे हृदय आकाशका सुनहरी सितारा है, उसके लिए मेरा हृदय कितना टूटता होगा, यह तू ही सोच सकती है। फिर चाहे वह बेल चला जाय, या वह पताका समूची उड़ जाय, तौ भी इतना हमेशा विश्वास रखना कि, मैं तुझे चाहता था, चाहता हूं, और चाहूंगा। जिस वस्तुको मैं सारे विश्वके लिए ढूंढ़ रहा हूं। उसे तेरे लिये तो विशेष प्रकारसे ढूंढ़ रहा हूं। और यदि तुझ पर किसी प्रकारका दुःख आ पड़े तो यह समझ कर धैर्य्य रखना कि, इस दुःखसे सारे विश्वके सुखका मार्ग खुल रहा है। मैं फिर भी तुझे बार बार कहता हूं कि, मैं तुझे सबसे अधिक चाहता हूं, क्योंकि, मैं सारे विश्वके प्राणियोंको चाहता हूं। इसलिए हे प्रिये! अब तू शान्ति पूर्वक सो।

(यशोधरा रोती २ सो जाती है)

(पटाक्षेप)

दूसरा दृश्य

[स्थान—राज्य सभा]

(मन्त्री और सामन्तोंके सहित राजा शुद्धोधन)

शु०—मन्त्रीजी! एक भी कला नहीं चलती, सब प्रयत्न निष्फल हुए। शुद्धोधनका भाग्य ही फूटा है, नहीं तो जो रत्न उसे

इस वृद्धावस्थामें प्राप्त हुआ है, उसके भी अलग होनेकी सम्भावना क्यों होती ?

मन्त्री—भगवन्! क्या किया जाय ? जितनी कोशिश करना अपने हाथमें थी। वह कर ली। अब फ़ल ईश्वराधीन है। वे कुमार आ रहे हैं। न मालूम क्या उद्देश्य है!

(कुमारका प्रवेश)

कु०—पिताजीके पूज्य चरणोमें सादर अभिवादन!

शु०—चिरञ्जीव होओ कुमार! आओ बैठो। आज अचानक आनेका कारण ?

कुमार—पिताजी! आपकी सेवामें दो एक नम्रनिवेदन करनेको दास उपस्थित हुआ है।

शु०—कुमार! और सब निवेदन सुननेको शुद्धोधन तैयार हैं। केवल संसार त्याग या वैराग्यकी बात सुननेके लिए उसके कान बहरे हैं।

कु०- पूज्य पिताजी! मैंने इन दिनों खूब विचार कर देखा है। खूब सोचा है। खूब समझा है। पर अन्तमे यही निष्कर्ष निकाला है कि, यह संसार सुखमय नहीं हो सकता। अनन्त दुखका तीव्र हाहाकार इसके परदेमें छा रहा है। जहांपर बुड्ढी मांके जीतेजी उसका जवान लड़का चल बसता है। विवाहके दूसरे ही दिन वर एक बालिकाको हमेशाके लिए रुलाकर मरघटका मेहमान हो जाता है। जहां पर सधवा सासोके सम्मुख विधवा बहुओंका हृदय विदारक दृश्य दृष्टि गोचर होता है, वह संसार कैसे सुखमय हो सकता है ?

शु०- वत्स! ये केवल इकतर्फा दलीले हैं। संसारमें दुख ही दुःखका साम्राज्य बताना मूर्खता है। जहां पर दाम्पत्य-प्रेम की पवित्र धारा कल कल नाद करती हुई बहा करती है। जहां

पर सतीत्वका पवित्र सौन्दर्य्य विश्वास घातका गला दबाये हुए खड़ा रहता है। जहांपर मातृप्रेमका सुन्दर हरिद्वार बसा हुआ है। वह संसार दुखमय कैसे हो सकता है?

सि—पिताजी! जिस दाम्पत्यमें वियोग है, जो सतीत्व सती को आगमें जला देता है। जो मातृप्रेम मौतके पंजेमें फंसा हुआ है, वह संसार कैसे सुखमय हो सकता है?

शु०-जहांपर परोपकारका पाठ घर २ सिखाया जाता है। जहांपर माता अपने पुत्रके लिए हंसते २ जान दे देती हैं। जहां पर सती स्त्री पतिके साथ आगमें जलना खेल समझती है। वह संसार दुःखमय कैसे हो सकता है?

सि०—जहांपर मनुष्यकी कोई भी इच्छा पूर्ण नहीं होती? जवानीका सुख पूरा न होते २ बुढ़ापा आ जाता है, जीवनकी साधना पूरी होनेके पहले ही मृत्यु आ लगती हैं। जहांपर आरोग्यकी अपेक्षा बीमारी अधिक हैं। प्रकाशकी अपेक्षा अन्धकार अधिक हैं। जीवनके आनन्दको बनिस्बत मृत्युका हाहाकार अधिक हैं। वह संसार कैसे सुखमय हो सकता है?

शु०-तुम्हारी ये सब दलीलें वृथा हैं। तुम्हें किसी योगी या सन्यासीकी हवा लग गई है। वत्स! देखो असल बात मैं बतला देता हूं। हमारे पूर्वजोंने आयुके चार भाग कर दिये हैं, १ ब्रह्मचर्य्य २ गृहस्थ ३ बानप्रस्थ ४ और सन्यास। ५० वर्ष तक मनुष्यको गृहस्थाश्रममें रहना चाहिए। इसलिए अभी तुम्हारा गृहस्थाश्रमका जीवन हैं। तुम आनन्द पूर्वक यशोधराके साथ रह कर राज्य कार्य्यको सम्पादित करो। और मैं अब बान-प्रस्थ होता हूं।

सि—पिताजी! यदि मनुष्यको यह पक्का विश्वास हो जाय कि, हम १०० वर्षतक निस्सन्देह जीवित रह सकेंगे, तब तो

शु—बस बहुत हो चुका ! खबरदार ! अब ऐसी मूर्खता भरी बातें मत किया करो। जाओ शीघ्रता पूर्वक प्रमोद भवनमें जाकर आराम करो।

(पटाक्षेप)

तीसरा दृश्य
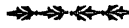
(स्थान—यशोधराका कमरा, समय—आधीरात)

(सिद्धार्थ कुमार)

सि—हृदय प्रश्न कर रहा है, ... दो मार्गोंमेंसे एक स्वीकार करो। या तो आज अनन्त धन सम्पत्ति एवं विलास सामग्रीके मालिक बनकर सांसारिक सुखको प्राप्त करो, या विश्व कल्याण-के निमित्त सबको लात मारकर सन्यास वृत्ति ग्रहण करो।... दो प्रश्न सम्मुख हैं कौनसा ग्रहण करूं ? अतुल विलास सामग्री ?......ना वह तो क्षणिक है। तो क्या सन्यास ?...... हां ठीक है लेकिन उसमें इन सब सुखोंको छोड़ना होगा। प्यारी यशोधराका भी त्याग करना होगा, प्राणप्रिय राहुलसे बिछुड़ना होगा। ना...यह तो नहीं हो सकता। फिर क्या करूं ? कुछ समझमें नहीं आता ! (सोचता है)

नहीं ! जाऊंगा ! जरूर जाऊंगा !! संसारका त्याग करूंगा। दुनियांकी दुखभरी पुकार मेरे कानोंमें पड़ रही है। ऐ निद्रावश प्रिये ! हमलोग आपसमें अलग हो जाएंगे, पर सारा विश्व हमे मिल जायगा। इस अनन्त आकाशमें भी मैं यही सन्देश पढ़ रहा हूं। वायुमें भी मुझे यही झंकार सुनाई पड़ रही है कि, समय आ पहुंचा है, सिद्धार्थ ! अब सारी मनुष्य जातिके उद्धारके

निमित्त इस छोटेसे भवनको त्यागकर विशाल कर्म्मक्षेत्रमें अवतीर्ण होओ। सारी मनुष्य जातिका दुःख दूर करो।

मैं नहीं चाहता कि, कठोर कृपाणकी धारसे मनुष्योंका रक्त बहाऊं-मैं नहीं चाहता कि पृथ्वीको पददलित कर प्रजाका रक्त बहाऊं-ऐसा शासन मैं नहीं चाहता-जिसमें आदिसे अन्ततक रक्तपात ही रक्तपात है। जिसके स्वभावमें ही आघात है, जीवन भरमें संग्राम ही संग्राम है, ऐसे चक्रवर्ती राज्यको दूरसे प्रणाम है। मैं पृथ्वीपर शान्ति पूर्वक पैर रखनेका इच्छुक हूं, और उसी मार्गको खोजने जाऊंगा, जिसमें सारी मनुष्य जातिको सुख मिले।

(ऊंचे स्वरसे) ऐ मेरे बुलानेवाले ताराओ! मैं आता हूं! ऐ दुखिया संसार! मैं तेरे लिए, तेरे रहने वालोंके लिए, आज इस ऐश्वर्य्य पूर्ण जीवनको छोड़ता हूं, यौवनको छोड़ता हूं, प्रमोद्‌काननको छोड़ता हूं। छत्र सिंहासनको छोड़ता हूं। और उसे छोड़ता हूं जिसका छोड़ना सबसे कठिन है। जो गृहस्थका रत्न है। उसी मेरी अर्द्धांगिनीको छोड़ता हूं। उसकी गोदमें मोदसे सोनेवाले बालकको छोड़ता हूं। जो हमारे परस्पर प्रेमकी कली है, अभीतक न फूली है न फली है।

(ऊंचे स्वरसे) ऐ अशान्तिकी अग्निमें जलते हुए जगत्! शान्त हो! शान्त हो! तेरे उद्धारके निमित्त बुद्ध आता है!! बुद्ध आता है!

ऐ दुःखसे सन्तप्त मनुष्य जाति! शान्त हो! शान्त हो!! तेरे उद्धारके लिए बुद्ध आता है! बुद्ध आता है!!

ऐ अन्धकारमें ठोकरें खाते हुए प्राणियो! धीरज रक्खो! धीरज रक्खो!! तुम्हें नवयुगका प्रकाश बतानेके लिए बुद्ध आता है! बुद्ध आता है!!

सिद्धार्थ कुमार

ऐ अशान्तिकी अग्निमे जलते हुए जगत्! शान्त हो! शान्त हो!! तेरे उद्धारके निमित्त बुद्ध आता है! बुद्ध आता है!!

ऐ चमकते हुए चन्द्रमा ! शान्त हो ! शान्त हो !! दुनियाको पवित्रताका संदेशा सुनानेके लिए बुद्ध आता है ! बुद्ध आता है !!

ऐ मीठी निद्रामें सोई हुई प्रिये ! मैं जाता हूं। संसारका उद्धार करनेके लिए जाता हूं !! सिद्धार्थका हृदय नहीं—ईश्वर-प्रेरणा नहीं—मनुष्य जातिका आर्त्तनाद नहीं-बल्कि तेरा प्रेम ही मुझे संसारका उद्धार करनेके निमित्त प्रेरित कर रहा है। इस-लिए तू सहर्ष मुझे बिदा दे।

ऐ मेरी भोली भाली मीठी नीन्दमें सोनेवाली प्रिये ! ऐ मेरे अज्ञान पुत्र !! पिता और परिजनो ! और ऐ मेरी शुभचिन्तक प्रजा ! तुम विश्व कल्याणके निमित्त कुछ दिन वियोगका दुख सहन करो। जिससे कि, प्रकाश चमक उठे, और सारा संसार ज्ञानमय हो जाय। अब मैं जाता हूं। (जाता है और कुछ दूर जाकर फिर वापस आता है)

सि—जाऊं बिना किसीसे पूछे हुए जाना पाप है। यशो-धरा सोई हुई हैं, यह भोली भाली मुग्धा नहीं समझती कि, मैं क्या कर रहा हूं? न मालूम पीछेसे इसकी क्या दशा होगी? ......चित्त क्यों चंचल हो रहा है? यशोधराका मोह क्यों सारे बदनमें छा गया है?

(घुटने टेककर) देवगण ! इस हृदयमें बल दो। मैं दुर्बल मनुष्य हूं। विषयोंमें आसक्त हूं। शक्ति हीन और असहाय हूं। परमात्मा ! इस हृदयकी वासनाको चूर चूर कर दे ! पीसदे ! सब स्वार्थको भस्म कर डाल। मुझे शक्ति दे।

तो प्रिये ! अब तू शान्ति पूर्वक सो मैं जाता हूं (जाना और फिर आना)

सि—ना, नहीं जाऊंगा ! बिना यशोधरासे बिदा मांगे हुए,

बिना उसे सान्त्वना दिये हुए, कभी न जाऊंगा, ऐसा भारी विश्वासघात कभी न करूंगा।

(यशोधराको जगाता है, वह चौंक उठती है)

यशो—हृदयेश्वर! क्या हुआ? मुझे जगाई क्यों? शीघ्र कहिए। मेरा चित्त बड़ा व्याकुल हो रहा है।

सि—प्रिये! जरा शान्त होओ! मैं आज तुम्हें बहुतही कठोर पर कल्याण कारक बात कहना चाहता हूं।

यशो—कहिए। शीघ्र कहिए।

सिद्धार्थ—प्रिये! आज मैं संसारका उद्धार करनेके लिए-सारी मनुष्य जातिके कल्याणके निमित्त जाता हूं। तुम मुझे सहर्ष बिदा दे दो।

यशो—(सन्न होकर) क्या कहा? .. ..कुछ सुनाई नहीं पड़ता !! नाथ! गिरी जा रही हूं, मुझे सम्हालो। चारों ओर अन्धकार छा रहा है? ना... ..थ . ...!

सि—जरा धीरज धरो! कुछ सोचो! स्वार्थके संकीर्ण क्षेत्रसे निकलकर परोपकारके विशाल क्षेत्रमें उतरो। देखो कितना पवित्र दृश्य है? फूल खिल रहे हैं, लेकिन अपने स्वार्थ के लिए नहीं, दूसरोंको सुगन्धि प्रदान करनेके लिए। फ़ल पक रहे हैं, लेकिन अपने लिए नहीं, दूसरोंके लिए! इसी प्रकार मनुष्य जीवनकी सार्थकता स्वार्थ साधनमें नहीं है। दूसरोंके हितमे ही उसके जीवन लक्ष्यकी पूर्त्ति है।

यशो—कुछ भी नहीं समझ पड़ रहा है—कान बहरे हुए जा रहे हैं। ज्ञान शक्ति लोप हो रही है। नाथ! मुझे आश्रय दो। मैं कुछ नहीं चाहती, केवल प्यारे सिद्धार्थको चाहती हूं।

सि—सिद्धार्थ हमेंशासे तुम्हारा है—तुम्हारा रहेगा, दुनिया-की कोई भी शक्ति उसे तुमसे नहीं छीन सकती। पर प्रिये! मैं

चाहता हूं कि, अनन्त कालतक हम इसी प्रकार सुख भोगा करें, मैं चाहता हूं कि, मृत्यु हमारे प्रेममें विच्छेद न डाल सके-बुढ़ापा हमारे यौवनपर वार न कर सके। उसीकी औषधि अपने और सारी मनुष्य जातिके निमित्त खोजनेके लिये मैं जा रहा हूं। तुम सहर्ष बिदा दे दो।

यशो—नाथ! मैं कुछ नहीं समझती। मैं भोली भाली बालिका हूं। मैं न तो सारी मनुष्य जातिके हिताहितको समझती हूं, न जन्म मरणकी औषधिको जानती हूं, मैंने आदिसे अन्ततक केवल प्रेम किया है! मैं केवल सिद्धार्थ कुमारको जानती हूं, और एक क्षणके लिए भी उनसे विलग होना नहीं चाहती। नाथ मुझे मत छोड़ो। मेरे नाथ! जीवन सर्वस्व !! (गलेसे लिपट जाती है)

सि—यशोधरा! मैं भी यही चाहता हूं कि, तुमसे एक क्षणके लिए भी विलग न होऊं। लेकिन मृत्यु नहीं मानती। आज तुम मुझे इस प्रकार रोक सकती हो। पर जब मुझपर या तुमपर मृत्युका निमंत्रण आजायगा, तब न तो तुम मुझे रोक सकोगी, न मैं ही तुम्हें रोक सकूंगा। इसीलिये—मृत्युकी दवा खोजनेको ही मैं जा रहा हूं। यदि इसपर भी तुम न समझो-तुम्हारी इच्छा न हो तो मैं यहीं रहता हूं। मैं कठिनसे कठिन पर्वतको तोड़कर उसमे रास्ता कर सकता हूं—वज्रको छातीपर झेलकर भी जा सकता हूं, पर यशोधराके प्रेम बन्धनको तोड़कर नहीं जा सकता। अच्छा यशोधरा! तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो, सिद्धार्थ अब यहीं रहेगा! (बैठ जाते है)

यशो—यह क्या? प्रकाश नज़र आ रहा है! हृदय हर्षित हो रहा है। ना .....अब मैं नहीं रोकूंगी! नहीं नाथ! नहीं! वह मेरी क्षणिक कमजोरी थी। मुझे क्षमा करो!

जाओ नाथ! जाओ!! मनुष्य जातिका कल्याण करनेके लिए जाओ! यशोधरा प्रसन्न हृदयसे तुम्हें बिदा करती है!! जाओ नाथ! जाओ! सारा संसार दुःखसे करुणाका क्रन्दन कर रहा है, उसे मिटानेके लिए जाओ!! यशोधरा हर्षित चित्तसे जगत्के कल्याणकी वेदी पर तुम्हें भेंट करती है। जाओ नाथ! जाओ!! अत्याचारसे पीड़ित इस ससारको साम्यवादका पवित्र सन्देशा सुनानेके लिये जाओ! यशोधरा तुम्हारा अभिनन्दन करती है। अब दुःख नहीं है! चिन्ता नहीं है, क्षोभ नहीं है! आज यशोधरा विश्व कल्याणके महा समुद्रमें अपने क्षुद्र व्यक्तित्वको विसर्ज्जन करती है। सिद्धार्थ–प्रेमको भूलकर आज वह विश्वप्रेमकी उपासिका बन बैठो है।

हृदय शान्त हो! धैर्य्य पूर्वक अपने नाथको बिदा कर! आंखो! निकालकर फेंक दूंगी, यदि इस मंगल समयमें तुमने एक बूंद भी आंसू गिराया!

(घुटने टेककर) देवगण! हृदयमें बल दो, जिससे इस कठिन परीक्षामें उत्तीर्ण हो सकूं। मेरे स्वामीको विश्वप्रेमकी वेदीपर अर्पण कर सकू। बहुत बड़ा त्याग है! हृदय टूक टूक हो रहा है। परमात्मा! सहायता करो, मेरे क्षुद्र स्वार्थको परोपकारके घनसे चूर चूर कर दो।

नाथ! अब जाओ। कोई दुःख नहीं है। मेरे लिए तुम कोई चिन्ता मत करो। रमणीका हृदय त्यागका मन्दिर है। त्याग ही उसका आदर्श है। यदि पुरुष अपना कर्त्तव्य पालन करते हैं तो रमणियां भी अपना धर्म समझती हैं। जाओ!

सिद्धार्थ—यशोधरा तुम्हें धन्य हैं। तुम्हारे इस अलौकिक त्यागको देखकर "त्याग" की उज्वलता दुगुनी हो गई है। तुम्हारे इस अपूर्व आत्मत्यागके उज्वल प्रकाशके सम्मुख सिद्धार्थका तेज

भी फ़ीका पड़ गया है। देवि! देखो आज तुम पतिबन्धनकी क्षुद्र सीमाको पार करके संसारको माताके स्थान पर बैठी हो। तुम्हारे तेजके सम्मुख सिद्धार्थ बहुत क्षुद्र नज़र आ रहा है। प्रिये! तो अब मैं जाता हूं। तुम्हारे और संसारके लिए सुखका मार्ग ढूंढ निकालनेके लिए जाता हूं। तुम्हारे प्रेमको मूर्त्तिमान कर संसारके सम्मुख रखनेके लिए मैं जाता हूं। अच्छा तो बिदा!

तातके चरणोंसे बिदा! जननीके प्रेमसे बिदा!! वत्स तुझसे भी बिदा!!! यशोधरा तुमसे भी अन्तिम बिदा!!!

(पटाक्षेप।)

दृश्य चौथा

(छन्दक सारथि और कुमार)

छन्दक—कुमार! यह क्या कर रहे हो? क्या तुम ज्योतिषी की वाणीको झूठी साबित करना चाहते हो? क्या तुम्हें इस विशाल साम्राज्यका शासन करनेकी अपेक्षा भिक्षापात्र ग्रहण करना अच्छा मालूम होता है? कुमार! पिताजीकी हालतका भी तो विचार करो! क्या सारे विश्वके कल्याणकी इच्छा रखनेवाले महत् हृदयमें अपने पिताके लिए कुछ भी स्थान नहीं है?

सि—छन्दक! शान्त हो! इतना आतुर मत हो जरा विचार कर, ज्योतिषीके कथनानुसार मैं केवल राजाही नही पर विशाल विश्वका राजा होनेके लिए जा रहा हूं। सारे विश्वकी रक्षा करना ही मेरा उद्देश्य हैं। पिताजीकी वेदना केवल रागमय है। स्वार्थी प्रेम या रागमेसे सिवाय वेदनाके और निकलता ही क्या

है ? पर छन्दक ! तू हमेशा यह स्मरण रखना कि, मैं पिताजीको या अन्य परिजनोंको सच्चे हृदयसे चाहता हूं। और उनको तथा अन्य प्रेम पात्रोंको कभी वियोगकी वेदना सहन न करना पड़े, इसीका उपाय ढूंढ़नेके लिए मैं जाता हूं। इस लिए हे छन्दक ! तू शीघ्र ही कन्तक (घोड़ा) को ला। और इस पवित्र एवं महत् प्रवासमें मुझे सहायताकर।

छन्दक—कुमार ! मैं तो कुछ नहीं समझता। आप ज्ञानी हैं। आपका हृदय सारे विश्वके लिए रोता है। आपका उद्देश्य विश्व कल्याण है। इस लिए मेरा कर्त्तव्य है कि, मैं आपकी आज्ञा का पूरा पालन करूं। पर कुमार ! आपकी यह सुकोमल देह किस प्रकार बनके कष्टोंको सहन करेगा ? यह सुन्दर शरीर किस प्रकार वल्कलोंको धारण करेगी ? यह तरह तरहके मिष्टाभ्रोंको प्राप्त करनेवाला उदर किस प्रकार भूख प्यासके दारुण कष्टोंको सहन करेगा ?

सिकु—छन्दक ! यह केवल आत्माकी कमजोरी है। जिसकी आत्मा कमजोर है, जिसे अपने व्यक्तित्वका खयाल है, उसेही ये बाधाएं कष्ट पहुंचा सकती हैं। पर जिसका व्यक्तित्व विश्वप्रेममे विलीन हो गया है, जिसका रुदन जगत् कल्याणके महासंङ्गीतमें छिप गया है, उसे ये सब बाते कैसे कष्ट पहुंचा सकती हैं ? अब तू विशेष प्रश्न मत कर, समय हुआ जा रहा है, शीघ्रही कन्तकको ला।

छन्दक—कुमार ! सब पहरेवाले जग रहे हैं। एवं दरवाज़ेपर वज्रकपाट लग रहा है जिसे खोलनेके लिए सौ मनुष्योंकी आवश्यकता होती है, और जिसकी आवाज दो कोसतक पहुंचती है।

कुमार—छन्दक ! इन बातोंसे डरनेको कोई आवश्यकता नहीं। यदि संसार त्याग करनेकी सिद्धार्थ सच्ची इच्छा रखता

हैं, तो कोई बाधा उसे नहीं रोक सकती। वह देख दरवाजा खुला पड़ा है, और पहरी गाढ़ निद्रामें मग्न है ।

छन्दक—आश्चर्य है ! (जाता है)

सिद्धार्थ—आजका दिन भी कैसा सुन्दर है । आज सिद्धार्थ विश्वप्रेमके महामन्त्रकी दिक्षा लेकर कर्म्मक्षेत्रमें अवतीर्ण हो रहा है। तो फिर सब वाधा विघ्न मार्ग मेंसे हट जायं। मृत्युके सिरपरसे मुकुट गिर पड़े ! वृद्धावस्था नेस्तनाबूद हो जाय।

(छन्दक कन्तकको लेकर आता है।)

सि—(कन्तककी पीठपर हाथ फिराकर) प्रिय कन्तक ! शांत हो ! शांत हो ! आज तुझे बहुत वड़ी मुसाफिरी करना है। इसलिये शान्त हो ! आज तुझे एक वहुत बड़ा कर्तव्य पालन करना हैं। सारे विश्वको सहायता करनेवाले एक भारी कार्य मे तेरी सहायताकी आवश्यकता है। केवल मनुष्य समाजका ही नहीं, पर जो तेरे समान अवाचक हैं, जो मनुष्यों द्वारा सताये जाते है। ऐसे मूक प्राणियोंके हितार्थ भी सुखका मार्ग ढूंढ़ निकालनेके लिये, मैं तेरी पीठपर आरूढ़ होता हूं। इसलिये तू शान्त रह ।

(पीठपर बैठ जाते हैं, छन्दक भी बैठ जाता है। घोड़ा चलता है ।

दृश्य परिवर्त्तन

—:०:—

स्थान अनोमा नदीका तट

(छन्दक और कुमार)

कुमार—कितनी दूर निकल आये छन्दक ?

छन्दक—कपिलवस्तुसे ४५ कोशपर यह नदी है कुमार!

कुमार—पैंतालीस कोश !!

छन्दक—हां !

कुमार—बस छन्दक! अब बहुत हैं, अब तुम जाओ! आज तुमने जो इतनी भारी सेवाकी है, उसका बदला तुम्हें और सारे विश्वको मिलेगा। अब तुम प्रिय कन्तकको, इन वस्त्रोंको, एवं इन आभूषणोंको लेकर पिताके पास जाओ। उन्हें मेरी ओरसे नम्रता पूर्वक कह देना कि, तुम्हारा पुत्र कृतघ्न नहीं होगा। उसकी खोज पूरी हुए पश्चात् वह अवश्य ही तुम्हारे पास आवेगा। यशोधराको भी तसल्ली देना। (स्वगत) यह क्या मन फिर चंचल क्यों हो रहा है? (प्रगट) उसे कहना देवी! तुम्हारे ही अपूर्व स्वार्थ त्यागका यह फल है कि आज सिद्धार्थ सारे विश्वके कल्याणकी भावना लेकर कर्मक्षेत्रमे अवतीर्ण हो रहा है। इसी प्रकार सबको सान्त्वना देना। यहले सुन्दर तलवार, यहले रत्न जटित म्यान, सिद्धार्थको अब इन ही कोई आवश्यकता नहीं है। अब तू शीघ्रता पूर्वक घरजा। (सब उतार देते हैं।)

छन्दक—हाय कुमार! तुम यह क्या कर रहे हो? तुम्हारा यह कोमल शरीर किस प्रकार इतनी कठोर तकलीफ सहन करेगा? नहीं कुमार! मैं किसी तरह घर न जाऊंगा। अब तो मैं तुम्हारे ही साथ चलूंगा। यह नहीं हो सकता कि स्वामी तो इतने कष्ट भोगे, और सेवक आनन्द करे।

कुमार—शान्त हो छन्दक! इतना आतुर मत हो। अभी तू घर जा, फिर जब मै मार्ग ढूंढ़ निकालूं उसके पीछे २ चले आना।

छन्दक—हाय कुमार! तुम्हारे साथ चलना भी मेरे भाग्यमें

बदा नहीं ! तुमसे अलग होना पड़ेगा। कुमार ! यह क्या कर रहे हो ? अपने सेवकको छोड़कर कहां जा रहे हो ? हाय ! हाय !! यह तुम्हारा जन्मका सेवक पीछे क्या करेगा ? (पैरोंसे लिपट जाता है)

कुमार—छन्दक ! शान्त हो ! मोहमें मत पड। चला जा।

(छन्दक—रोता २ जाता है)

(एक भगवां वस्त्रवाले शिकारीका प्रवेश)

कुमा—क्यों भाई ! तुम इन रेशमी कपड़ोंके बदले ये भगवां कपडे दे दोगे ?

सि—हां, हां, प्रसन्नता से।

(कुमार वस्त्र बदल लेते हैं)

कुमार—बस अब सिद्धार्थका कार्य इन्हीं वस्त्रोंसे प्रारम्भ होता है।

(पटाक्षेप)

(तीसरा अंक समाप्त)

चौथा अंक
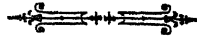
प्रथम दृश्य।
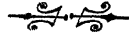
[स्थान—रानी गौतमीका महल]

(समय प्रातःकाल)

गौतमी—चारों ओर अपशकुन हो रहे हैं। रात भर शहर में कुत्ते भौंकते हैं। बिल्लियां चिंघाड़ रही है। उल्कापात हो रहे हैं। अवश्य कोई अमङ्गल होने वाला हैं। भगवन्! राज्यको एवं कुटुम्बको सब अमंगलोंसे बचाओ।

(घबराई हुई एक दासीका प्रवेश)

दासी—महारानी जी! महारानी जी!! ग़ज़ब हो गया।

गौतमी—अरी क्या हुआ? शीघ्र कह।

दासी—गज़ब हो गया! कहनेका साहस नहीं होता।

गौतमी—कहती भी है। मेरा चित्त बड़ा व्याकुल हो रहा है।

दासी—कुमार सिद्धार्थका पता नहीं है। कल रातसे ही वे न मालूम कहां चले गये।

गौतमी—(जैसे सुना ही नहीं) क्या कहा? फिरसे तो कहना।

दासी—कुमार सिद्धार्थका पता नहीं हैं।

गौतमी—क्या कहा? कुमार सिद्धार्थका पता नहीं है। सच कह रही है?

दासी—यह बात भी कहीं हंसीमें कही जा सकती है। महा-रानीजी ?

गौतमी—हाय कुमार (मूर्च्छित हो जाती है)

(दासी जल छिड़क कर सावधान करती है।

गौतमी—हाय सिद्धार्थ ! मेरे अन्धेरे हृदयके दीपक ! मेरे हृदय कुसुमके पराग ! तुम कहां चले गये ! अरे, जाते समय अपनी इस दुखियारी माताको एक शब्द तो सान्त्वनाका दे जाते जिसने तुम्हें पाल पोसकर इतना बड़ा किया; उसके प्रति क्या तुम्हारा यही कर्तव्य था। ओ कृतघ्न !·········यह कौन ? यह कौन आरही है ? यह सन्यासिनीका वेष धारण किये हुए कौन आ रही हैं ? अरे क्या यह यशोधरा हैं ? कहां, नहीं तो···हां, हां, वही तो है ? हाय बेचारी की एक ही रातमें कैसी दशा हो गई है ? बिलकुल पहचानी नहीं जाती। शरीर पर गेरुआ वस्त्र धारण किये हुए है, कण्ठमें रुद्राक्षकी माला पड़ी हुई है। बाल बिखरे हुए हैं, मुख कुम्हला गया है। फिर भी एक पतली सी हंसी की रेखा उजड़ी हुई नगरी पर प्रातःकालीन सूर्य्यकी किरणों की तरह शोभा दे रही है।

(धीरे २ यशोधराका प्रवेश और गौतमीको प्रणाम करना)

गौतमी—(दौड़ कर यशोधराको छातीसे लगाकर) हाय बेटी ! तेरी यह दशा कैसे हो गई। यह फूलोंकी शय्यासे भी कष्ट पानेवाला शरीर किस प्रकार इन गेरुए वस्त्रोंको धारण करता होगा। हाय ! जिस कण्ठमें कल हीरे मोतियोंका बहुमूल्य हार शोभा पा रहा था, उसमे यह रुद्राक्षकी माला कैसे धारण करती होगी ?

यशोधरा—शान्ति ! माताजी ! शान्ति रखिये ! धैर्य्यसे काम लीजिए। संसार परिवर्तन शील है। इसमें तो परिवर्तन हुआ

ही करता है। इन वस्त्रोंमें एवं इस पोशाकमें मुझे कोई दुःख नहीं है। मुझे अभिमान है कि, मेरे स्वामी एक भारी कर्तव्य का पालन करनेके लिये सब वैभवको लात मारकर चले गये हैं। माताजी! इस पार्थिव शरीरके सुख दुःखकी परवाह करना कमजोर दिलोंका काम है। इच्छाओंका दमन करनेमें जो आनन्द है, उतना बहुमूल्य जेवरों और वस्त्रोंमें कहांसे मिल सक्ता है?

गौतमी—बेटी! क्या तुझे अपने स्वामीके वियोगका दुःख नहीं होता? देख तो तेरा शरीर एक ही रातमें कितना कुम्हला गया है!

यशो—माताजी! पार्थिव शरीरके वियोगका दुःख पार्थिव शरीरको ही होता है। न तो आत्मामें कभी वियोग ही होता है, न उसे वियोग जनित कष्ट ही होता है।

गौतमी—वे महाराज आ रहे हैं, मालूम होता है, उन्हें भी यह समाचार मिल गया है। मुख पर गहरी उदासी छाई हुई है। पैर लड़ खड़ा रहे हैं।

(शुद्धोधनका प्रवेश, यशोधराका एक ओर खड़ा हो जाना)

शु—गौतमी! मेरा सिद्धार्थ कहां है? शीघ्र बतलाओ।

गौ—महाराज! तनिक शान्त हूजिए।

शु—शान्ति नहीं है—चैन नहीं है—प्रकाश नहीं है। मैं अशान्तिकी दारुण ज्वालामें जल रहा हूं, तुम शीघ्र प्यारे सिद्धार्थको बतला दो! (यशोधराकी ओर देखकर) यह सन्यासिनी कौन है?

गौ—महाराज इतने अस्थिर चित्त हो रहे हैं कि, अपनी पुत्र बधूको भी नहीं पहचान पाते?

शु—क्या यह यशोधरा है? इसका यह वेश! ओ! निर्दयी परमात्मा! अपनी सृष्टिको सम्हाल! (मूर्च्छित)

(यशोधरा और गौतमी गुलाब जल छिड़ककर होशमें लाती हैं)

शु—क्या तुम लोग मेरा पीछा न छोड़ोगे, तुम हट जाओ यहांसे। मेरे हृदयकी जलन बुझाने दो। ऐ सन्ततिवालों! तुम शुद्धोधनके सन्देशोको सुन लो, कभी तुम अपने पुत्रोंपर विश्वास मत करो, ये बड़े कृतघ्न होते हैं। कभी इनके मोह जालमें मत पड़ो ये बड़े शैतान होते हैं। सिद्धार्थ! मैंने तेरे लिए क्या २ नहीं किया। फिर भी आ कृतघ्न! अरे नृशंस!! तूने यह बदला दिया!

(छन्दकका प्रवेश)

छन्दक—शान्त हूजिए महाराज! जरा धैर्य्य रखिए। बिना सोचे समझे आप अपने पुत्रको कृतघ्न न कहिए। सिद्धार्थ कुमार कृतघ्न नहीं हैं, नृशंस नहीं हैं। वे महात्मा हैं—जगतके भूषण हैं! मैंने वह दृश्य अपनी आंखों देखा है! बड़ा ही अपूर्व दृश्य था! जिस समय कुमार सिद्धार्थने राज्य वेषको उतारकर सन्यास वेष धारण किया था। उस समय सुन्दर प्रातः काल हो रहा था। वह सन्यासका वेष उस सुन्दर देह पर बड़ा ही भला मालूम होता था। ऐसा मालूम होता था मानों ज्ञानने आकर कर्मको पकड़ा है। शान्तिने आकर कल्याणको पकड़ा है। प्रतिष्ठाने आकर विसर्जनको पकड़ा है। दयाने आकर धर्मको पकड़ा है। क्षमाने आकर कर्तव्यको पकड़ा है। और सौम्यताने आकर सुन्दरताको पकड़ा हैं।

शु—क्या कहा? क्या मेरा बेटा सन्यासी हो गया? सिद्धार्थ! तुझे किस बातकी कमी थी? फ़िर तू क्यों सन्यासी हो गया? हाय अभागे शुद्धोधन! (मूर्च्छित हो जाते हैं)

(सब लोग चैतन्य करते हैं)

शु–[उन्मत्तकी तरह] प्रकाश ! प्रकाश !! प्रकाश !!! यह कौन आ रहा है ?—कौन सिद्धार्थ कुमार हैं ? आओ बेटा ! आओ ! शुद्धोधनकी जलती छातीको ठण्डी कर दो। मैं तुम्हें क्षमा कर दूंगा। आओ ! दौड़ते हैं, और ठोकर लगनेसे गिर पड़ते हैं। फिर उठकर हाथ लम्बेकर दौड़ते हैं, और फ़िर गिरते हैं [सब मिलकर उन्हें सम्हालते हैं]

(शु–झुंझलाकर) छोड़ दो ! तुम सब मुझे छोड़ दो। मत तङ्ग करो, वह देखो सिद्धार्थ मुझे बुला रहा है। आता हूं ! बेटा ! आता हूं ! छोड़ दो [मूर्च्छित]

गौ—हाय ! महाराजकी क्या दशा हो रही है ?

(पटाक्षेप)

दूसरा दृश्य

०००००००

(स्थान—रत्नागिरी पर्वतका एक हिस्सा)

समय प्रातःकाल

(सिद्धार्थकुमार)

सि—कितना पवित्र स्थान है ? इस एकान्त स्थानमें, इस सुन्दर नील नभोमण्डलके नीचे, सुन्दर शिलाओंपर बैठकर मैं सत्यकी खोज करूंगा। कैसा आनन्द है ? यह आनन्द क्या राजमहलोंमें प्राप्त हो सकता है ? अच्छा तो अब मेरे ध्यानका समय होता है। ध्यान कर लूं।.....

(नैपथ्यमें—रक्षा करो देव ! रक्षा करो ! मेरे पुत्रको बचाओ)

सि—(चौंककर) क्या हुआ ? यह करुण आर्त्तनाद कौन कर रहा है ?

(मृतक बालकको लिये हुए एक स्त्रीका प्रवेश)

सि—क्या हुआ बहन! क्यों रो रही है?

स्त्री—भगवन्! मैं एक बहुत ही दीन स्त्री हूं। दीनताके कारण मैं अपने इस इकलौते लड़केको लेकर पासही एक झोपड़ी में अपना जीवन व्यतीत करती हूं। मेरे इस एक लड़केके सिवाय संसारमें और कोई नहीं है। यही मेरी आंखोंका तारा और दिलका दुलारा है। कल यह बालक खेलता हुआ फूल तोड़नेको चला गया, और फूल तोड़ने लगा, इतनेहीमें एक काले सांपने आकर इसे काट लिया, तभीसे इसकी यह हालत हो रही है, न न तो यह हिलता है, न चलता है, न हंसता है। कोई कोई कहते हैं कि यह मर गया। लेकिन महात्मन्! यह सुननेके लिए मेरे कान तैय्यार नहीं, यदि यह मर गया तो फिर मेरे जीवित रहनेका ही क्या प्रयोजन है? इसीलिए मैं आपकी शरण आई हूं। कृपा कर इसे जीवन दान दीजिए, नहीं तो मैं भी आत्महत्या कर लूंगी।

सिद्धार्थ—बहन! घबराओ मत, मैं इस बच्चेको अवश्य जीवित कर दूंगा, यदि तुम मेरी बतलाई हुई औषधि ला दोगी।

स्त्री—कौनसी औषधि देव?

सि—एक मुट्ठी सरसोंके दाने।

स्त्री—अभी लाती हूं।

सि—लेकिन ठहरो! उन दानोंमें एक शर्त्त है। वह यह कि, वे दाने उसीके यहांसे लाना, जिसके यहां आजतक कोई मृत्यु न हुई हो। यदि उसके घरमें मौत पहुंच गई होगी तो फिर वे दाने किसी कामके न रहेंगे।

स्त्री—बहुत अच्छा भगवन्! (जाती है)

सि—हाय! इस संसारमें मोहका कितना प्रबल साम्राज्य है? बेचारी इस स्त्रीकी दशा कितनी करुणाजनक है?

(कुछ भेड़ों और बकरियोंके साथ ग्वालोंका प्रवेश)

ग्वाल—(हुंकालते हुए) हुर्रं ! हुर्रं ! हट, चल, (एक बकरीका बच्चा पैरमें चोट लगनेकी वजहसे धीरे धीरे चलता है—ग्वाल उसे लाठी मारता है, सिद्धार्थ दौड़कर उसे उठा लेता है)

सि—(स्वगत) अहा, बेचारा कितने कष्टसे चल रहा है ? तिसपर भी ये निर्दयी लोग उसे लाठी मार रहे हैं। (पुचकार कर) ऐ निराधार पशु ! शान्त हो ! मैं तुझे उठाकर ले चलूंगा। यह कार्य्य भी उतना ही महत्व रखता है, जितना गुफाओंमें बैठकर जगत्के उद्धारका विचार करना। (ग्वालोंसे) क्यों भाई ! इन पशुओंको तुम कहां ले जाओगे ? और क्यों इन्हें इतनी निर्दयतासे मार रहे हो ?

ग्वाला—सन्यासीजी ! आज राजा बिम्बसार अपने देवोंको सन्तुष्ट करनेके लिये एक भारी यज्ञ करने वाले हैं। उस यज्ञमें सौ भेड़ों और सौ बकरोंकी बलि चढ़ाई जायगी, उसीके लिए हम इन पशुओंको ले जा रहे हैं।

सि—ओफ ! (प्रगट) चलो मैं भी तुम्हारे साथ चलता हूं (कन्धेपर बच्चेको रखकर सब ग्वालोंके साथ प्रस्थान)

दृश्य परिवर्त्तन

—:o:—

(स्थान—यज्ञमण्डप)

(राजा बिम्बसार प्रधान आसनपर बैठे हैं पासही अग्नि कुण्ड जल रहा है, पासमें बैठे हुए श्वेत वस्त्र धारी ब्राह्मण उसमें घी डालकर प्रज्वलित कर रहे हैं)

(द्वारपालका प्रवेश और अभिवादन करना)

द्वार—भगवन्! द्वारपर एक महातेजस्वी योगिराज यज्ञके लिये एक भेड़के बच्चेको कंधेपर लिये हुए खड़े हैं। आज्ञा हो तो यहां ले आऊं।

बिम्ब—अत्यन्त सम्मान पूर्वक ले आओ।

द्वार—जो आज्ञा।

(प्रस्थान, और सिद्धार्थके साथ पुनः प्रवेश)

(सिद्धार्थका भव्य मुखमण्डल देखकर सब खड़े हो जाते हैं। राजा उन्हें प्रणाम करता है, और एक उच्चासन देता है, पशु एक तरफ खड़े हो जाते हैं)

बिम्ब—महात्मन्! आज आपने इस शुभ समयमें पधारकर दासको बडा आभारी किया।

सिद्धार्थ—राजन्! इन ग्वालोंके मुंहसे यज्ञकी बात सुनकर देखनेको इधरही चला आया हूं।

(इतनेमें एक ब्राह्मण एक बकरेका मुंह घाससे बांध देता है) (बकरा जोरसे आर्त्तनाद करता है, एक ब्राह्मण छुरा लेकर उसके पास पहुंचता है, और मंत्रोच्चार कर उंचेस्वरसे कहता है)

हे देवो! अभीतक किये गये सब यज्ञोंमें यह सबसे बड़ा यज्ञ राजा बिम्बसारकी ओरसे किया जाता है। इस अग्नि कुण्डमें सीजनेवाले रक्त मांसकी सुगन्धसे तुम तृप्त होओ-तुष्ट होओ-प्रसन्न होओ। राजाके सब पाप इस भस्म होते हुए बकरेपर पड़ें, और इस बकरेके साथही साथ वे भस्म हो जायं।

(इतना कहकर वह ब्राह्मण एक चमचमाता छुरा उठाता है, सब दर्शक स्तब्ध हो जाते हैं, इतनेहीमें "ठहरो" इस आवाज़से पण्डाल गूंज उठता है छुरा ज्योंका त्यों रह जाता है)

सिद्धार्थ—(उठकर) ठहरो! (फिर उस ब्राह्मणके पास

जाकर) हे परमात्माके अंश ! तू यह छुरा खुशीसे मेरी छातीमे भोंक दे। मैं और यह बकरा एकही हैं।

(सब स्तब्ध हो जाते हैं, किसीका साहस उस बकरेपर छुरी फेरनेका नहीं होता)

सिद्धार्थ—ओ राजन् ! ऐ ब्राह्मणों !! क्या धर्मके नामपर इस भीषण अत्याचारको करते हुए तुम्हारी आत्मा नहीं कांपती, इन निरपराध पशुओंकी दुर्बल गरदन पर चमचमाता छुरा फेरते क्या तुम्हारा हृदय नहीं सहमता ! राजन् ! क्या तुम नही जानते कि, इस जीवनका कितना मूल्य है ? यह एक ऐसी वस्तु है जिसका हरना तो सहज है, मगर प्रदान करना असम्भव है। इस संसारमें दयाही एक ऐसी वस्तु है जिसके सहारे प्राणी अपना जीवन निर्विघ्न बिताता है। उसी दयाके उज्वल तत्वका तुम्हारे समान उच्च पुरुषोंके द्वारा घात होना देख बड़ा दुःख होता है। महाराज ! तुम निश्चय समझो कि, रक्तसे कभी आत्मा नहीं धुलती, ऐसे घृणित उपायोंके द्वारा दुःखोंसे मुक्ति मिलनेकी आशा रखना भयंकर भूल है। दुख कहते किसे हैं ? असत्के विचार, या असत् कार्य्योंके प्रतिबिम्बको ही दुःख कहते हैं। उसे दूर करनेकी शक्ति देवोमें क्या, देवोंके देवोंमें भी नहीं है। वह शक्ति तुम अपने आप उत्पन्न कर सकते हो। इसकी प्राप्ति-का रामबाण उपाय दया और प्रेमकी कोमल भावना रखना है। अतएव दया और प्रेमपर कोमल भाव रक्खो। सब प्राणियोंको समान दृष्टिसे देखो, तुम्हारे पाप आपही नष्ट हो जाएंगे।

राजन् ! पशुओंके मारनेसे दुष्कर्मों और दुर्व्यसनोंका मारना कहीं अच्छा है। जो पापों और कुवृत्तियोंका बलिदान करते हैं, वे पशु बलिदानकी निःसारताको खूब समझते हैं। पशुओंके रक्तमे आत्माको पवित्र करनेकी शक्ति नहीं, हृदय तो दुष्ट भाव-

नाओं और कामनाओंके छोड़नेसे शुद्ध होता है। देव पूजाकी अपेक्षा सत्य शील, और जितेन्द्रिय होना कही अच्छा है।

(सुनतेही राजा बिम्बसार, बुद्धके पैरोंपर गिरते हैं, सब उनका अनुकरण करते हैं)

बिम्ब—दयालु देव ? हमें क्षमा करो। हमलोग अज्ञानान्धकारमें पड़कर यह सब कार्य्य करते चले आये है। इसका हमे बड़ा खेद है। हमारा बडा भाग्य है जो आज आपने आकर हमें इस भारी पापसे बचा लिया। आजसे मेरे राज्यमें कोई भी पशुओंकी बलि न दे सकेगा। दयालु महात्मन्! शान्त हो! हमपर दया करो।

सि०—राजन्! तुम्हारे अन्तः करणमें इस प्रकार परिवर्त्तन होते देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है।

(यज्ञ कुण्ड बुझा दिया जाता है)

सि०—अच्छा तो राजन्। अब मैं जाना चाहता हूं।

बिम्ब—महात्मन्! आपके हाथ तो राज दण्ड धारण करनेके योग्य जान पड़ते हैं, यह भिक्षापात्र तो आपके हाथमे शोभा नहीं देता। नियमित दर्जेकी अधिकार तृष्णा भी उदार चरित मनुष्यकी शोभा है। धन तुच्छ मानने योग्य वस्तु नहीं है। कहनेका मतलब यह कि, धर्म, सत्ता, और धन, तीनोंहीका उपयुक्त उपयोग करना उदार चरित मनुष्योंका काम है।

सि०—राजन्! यह मैं मानता हूं कि, अल्प तृष्णा बुरी नहीं है, पर साथही यह भी जानता हूं कि, तृष्णा मर्यादामें रहनेवाली वस्तु नहीं है। सत्ताके साथ चिन्ता अवश्य रहती है। पार्थिव राज्याधिकार, स्वर्गवास, और त्रिभुवनके स्वामित्वसे भी शुद्ध आचरणका महात्म्य अधिक है। इसी कारण मेरा मन ऐहिक सुखोंसे विमुख हो गया है। मुक्तिके मार्गको खोजना ही मेरा

मुख्य उद्देश्य है। मुझे विश्वास है कि, मैं अवश्य सफलता प्राप्त करूंगा। जब मेरा अभीष्ट सिद्ध हो जायगा, तब मैं अवश्य आकर तुमसे मिलूंगा। मुझे अब जाने दो।

बिम्ब—योगिराज! जानेके पहले अपना असली नाम और पता तो बतला जाइए।

सिद्धार्थ—नाम और पतेकी क्या अवश्यकता है, राजन्? खैर यदि तुम्हें इतना आग्रह है तो सुनो मैं राजा शुद्धोधनका पुत्र कुमार सिद्धार्थ हूं।

बिम्ब—(आश्चर्य और हर्षके साथ) सिद्धार्थकुमार!! राजा शुद्धोधनके पुत्र!! कुमार! तुमने यह वृत्ति कबसे धारणकी?

सि०—इन बातोंके पूछनेका अभी समय नहीं है, राजन्! फिर कभी बतलाऊंगा, इस समय मुझे जाने दो।

बिम्ब—यह क्या कुमार! आपको एक दो दिन तो यहां अवश्य ही ठहरना होगा। यदि महाराज शुद्धोधनसे हमारा इतना सम्बन्ध है तो क्या आप इतनी कृपा भी नहीं कर सकते?

सि०—राजन्! इस समय स्नेह बन्धनमें फसना मेरे लिए हानिकर है, मेरी खोज पूरी होने पर मैं अवश्य मिलूंगा। इस समय मैं जाता हूं। (प्रस्थान)

बिम्ब—मन्त्रीजी! एक शिला लेख इस आशयका बनवाकर लगा दो कि—"मगध देशके राजा बिम्बसारकी ऐसी इच्छा है कि, यज्ञमें, या भोजनके लिए, जो पशुओंकी हिंसा होती है, वह ठीक नहीं है। ज्यों २ ज्ञानकी वृद्धि होती जाती है, त्यों २ मालूम होता है कि, सब जीव समान हैं। दया करने वालेको दया मिलती है। इस कारण आजसे कोई यज्ञके लिए या भोजनके निमित्त पशुओंका संहार न करे।"

मंत्री-जो आज्ञा। (पटाक्षेप)

तीसरा दृश्य
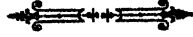
(स्थान—प्रमोद भवन)

(सन्यासिनीके वेषमें यशोधरा और चन्द्रकला)

यशोधरा—चन्द्रकला ! मानव हृदय भी कितना दुर्बल होता है ? हजार बार चेष्टा कर आश्वासन देने पर भी इसकी दुर्बलता नहीं जाती। मैं जानती हूं-मैं समझती हूं कि, वे एक महान् कार्य्यको सिद्ध करनेके लिए गये हुए हैं। फिर भी हृदय नहीं मानता, और आंखे दो बून्द आंसू गिरा ही देती हैं। मैं यह जानती हूं कि, मेरी आंखोंका गिरा हुआ एक बून्द आंसू भी उनके हृदयको कष्ट पहुंचायगा, इसीलिए रोकनेकी बहुत चेष्टा करती हूं, पर यह रुकता ही नहीं।

चन्द्र—बहन ! तुम भूल कर रही हो, ये आंसू बहुत पवित्र हैं, ये उनकी अन्तरात्माको दुःख नहीं पहुंचा सकते, बल्कि जो कुछ भी मोह उनकी उज्वल आत्मा पर चिपटा होगा, उसे धोकर साफ़ कर देंगे। ये आंसू ईश्वरीय करुणासे भी अधिक पवित्र, सतीके आशीर्वादसे भी अधिक महत्व शील, और कमल पर पड़े हुए ओस बिन्दुसे भी अधिक सुन्दर हैं। ये आंसू हृदयके तमाम मैलको धोकर उसे स्फटिकके समान साफ कर देंगे।

यशो०—चन्द्रकला ! अभी भी मेरे हृदय पर मोहका पटल छाया हुआ है, अभी भी जब इस शयन मन्दिरकी ओर आंख उठाकर देखती हूं—अभी भी जब छिटकी हुई चान्दनीमें इस पुष्प वाटिकाकी ओर एक निगाह दौड़ती हूं, अभी भी जब मैं पहलेके पहने हुए कीमती वस्त्रोंको देखती हूं, तो हृदय एक दम

रो उठता है। आंखोंसे आंसुओंके झरने बहने लग जाते हैं। और एक लम्बी सांसके साथ ही साथ निकल पड़ता है—"भगवन्! तुमने यह क्या किया? मुझे इतना सुख दिया ही क्यों? और दिया तो फिर छीना क्यों?

चन्द्र—धीरज रक्खो बहन?

यशो—कहांतक धीरज रक्खूं चन्द्रकला? मैं एक नारी—दुर्बल नारी-मात्र हूं। जिस त्यागको महा महिमामयी सीता देवी भी न कर सकी, वही त्याग परमात्माने मुझ क्षुद्र नारी-से करवाया है। उसी कठिन परीक्षामें मुझे डाल दिया है। उसमें एकदम उत्तीर्ण होना क्या सहज है? हा भगवन्! (रोती है)।

चन्द्र—शान्त होओ बहन! शान्त रहो। वे सन्यासिनी जी आरही हैं।

यशोधरा—(प्रसन्न होकर) अच्छे मौकेपर आ रही हैं, शायद इनसे इस दग्ध हृदयको कुछ शान्ति मिले।

(सन्यासिनीका प्रवेश)

यशोधरा—(खड़ी होकर) प्रणाम सन्यासिनी जी!

चन्द्रकला—(खड़ी होकर) प्रणाम सन्यासिनीजी!

सन्यासिनी—(दोनों हाथ ऊंचे करके) शान्ति लाभ!!

यशोधरा—सन्यासिनी जी! कुछ उपदेश कीजिये जिसमें हृदयको शान्ति मिले।

सन्यासिनी—यशोधरा! मैं तुम्हें क्या उपदेश करूं? मैं तो क्या बड़े बड़े महात्मा भी तुम्हें उपदेश करनेका अधिकार नहीं रखते तुमने इस अभूतपूर्व महात्यागके द्वारा संसारको जो दिव्य उपदेश दिया है, उसके सम्मुख सभी उपदेश फीके पड़जाते हैं। तुमने सारे संसारको त्यागका महत्व बतला दिया है। तुम्हारे

इस महात्यागके सम्मुख बड़े बड़े त्यागियोंके आसन झुक गये हैं। तुम्हें क्या उपदेश दूं यशोधरा ?

यशो—सन्यासिनी जी ! मेरे हृदयमें अब भी मोहका पटल छाया हुआ है। हृदयमें अब भी अशान्तिकी ज्वाला धधक रही है। कोई ऐसा उपदेश दीजिए जिससे यह मोहका पटल फट जाय और ज्ञानका सूर्य्य चमकने लगे। कोई ऐसा उपदेश दीजिए जिसकी पवित्र धारासे यह धधकती हुई ज्वाला बुझ जाय, और टूटता हुआ धैर्य्यका बान्ध फिरसे दृढ़ हो जाय। ऐसाही कोई धर्मका उपदेश दीजिए।

सन्यासिनी—यशोधरा ! धर्मका सूक्ष्मतत्व तो बहुत गूढ़ है। पर मोटे तरीकेसे दूसरोंके लिए अपने स्वार्थका त्याग करना ही सब धर्मोंकी जड़ है। मनुष्य जातिके चरणोंमें हंसते हंसते अपने सुखका बलिदान कर देना ही सर्वोत्तम धर्म है।

यशो—यह तो ठीक है, ऐसा किया भी, लेकिन उससे लाभ क्या ? मुझे तो कुछ भी लाभ नहीं दिखाई देता। हां, एक अशान्ति तो घरकी मेहमान हो जाती है।

सन्यासिनी—नहीं यशोधरा ! है, बड़ा भारी लाभ है, इससे सबसे बड़ा सुख प्राप्त होता है।

यशो—कौन सा सुख ?

सन्यासिनी—विवेककी जय ध्वनि, आत्माका सन्तोष, मनुष्यका आशीर्वाद यही वह महा सुख है। इसके आगे स्वार्थ सिद्धिके सारे सुख फीके पड़ जाते हैं। स्वार्थके बलिदानसे मनुष्यकी जय होती है। सभ्यता आगे बढ़ती है। इस महान् उद्देश्यके लिए अपने कर्त्तव्यका पालन करनेमें बड़ा सुख है यशोधरा !

यशो—समझ रही हूं। सन्यासिनीजी !

सन्यासिनी—अच्छा यशोधरा! अब मैं जाती हूं। फिर आऊंगी। चित्तमें खेद मत करो बेटी!

यशोधरा—अच्छा फिर अवश्य पधारिए।

चन्द्र—अच्छा बहन! जरा मैं भी घर हो आऊं। जानेको जी तो नहीं चाहता, पर वहां भी कार्य्य होगा।

यशो—हाय! तुम दोनों चली आओगी तब मेरा जी कैसे लगेगा। मुझे तो तुम्हारा ही आसरा है। (रोती है।)

(दोनों उसे सान्त्वना देकर जाती हैं।)

यशोधरा—(हाथ जोड़ कर) भगवन्! इस दुर्बल हृदयको कुछ बल दो। नहीं तो मैं जीवित न रह सकूंगी। इस पार्थिव स्मृतिको दूर २ कर दो, केवल हृदयमें आत्मिक स्मृतिका एक दीपक जला करे।

(धीरे २ परदा गिरता है।)

चौथा दृश्य

[स्थान-नदीतट, समय संध्याकाल]

(सिद्धार्थ कुमार)

सि—संसारमें भी कैसे २ भीषण अत्याचार हुआ करते हैं। मनुष्य अपने क्षुद्र स्वार्थके लिए कितने अघोर कृत्य करनेपर उतारू हो जाता है? बेचारे हजारो निरपराध प्राणी प्रज्वलित ज्वालाके अन्दर भस्म कर दिये जाते हैं। कितना भीषण अत्याचार! सिद्धार्थ! तेरे तमाम कार्य्य क्रमोंमे एक प्रधान कार्य्यक्रम इस अत्याचारको दूर करना है।

(मृतक बच्चेकी माताका प्रवेश

स्त्री—महाराज! क्या आप वही महात्मन् हैं, जिन्होंने कल सबेरे इस बच्चेको निरोग करनेका वचन दिया था? और जिन्होंने मुझसे इसकी औषधिके लिए एक मुट्ठी सरसोंके दाने मंगवाये थे?

सि—हां बहन! मैं वही हूं। क्या तुम सरसोंके दाने ले आईं?

स्त्री—महात्मन्! आपकी आज्ञा पातेही मैं बच्चेको कन्धे पर रखकर नगरमें गई। और घर २ एक मुट्ठी सरसोंके दानोंकी याचनाकी। जिसने उस बच्चेकी करुणाजनक स्थिति देखी, उसीने कृपापूर्वक मेरी इच्छा पूर्ण करनेकी इच्छा प्रगट की। पर जब मैं उनसे यह पूछती कि, क्या तुम्हारे घरमे कोई मरा तो नहीं है, तो यही जबाब मिलता कि, बहन! यह क्या पूछती है? जीवितोंकी संख्या तो उंगली पर गिनी जा सकती है। पर मृतकोंकी संख्या तो अपार है। प्रत्येक घरपर मुझे इसी प्रकारका उत्तर मिला, लाचार होकर मैं आपके पास वापस लौट आई हूं। अब कृपा पूर्वक आप ही कोई ऐसा स्थान बतला दीजिये, जहांसे याचित वस्तु प्राप्त हो जाय।

सि—प्रिय बहन! मैं जिस बातका कड़वा उपदेश तुझे देना चाहता था वह तुझे स्वयं ही मिल गया। तुझे मालूम हो गया कि, सारा जगत मृत्युके दृढ़ बन्धनमें बन्धा हुआ है। वज्रसे भी अधिक कठोर, महामारीसे भी अधिक भयंकर, और भविष्यसे भी अधिक अनिवार्य, यह मृत्युका बन्धन है। कोई भी जीवित प्राणी इस बन्धनसे मुक्त नहीं। जो आया है वह अवश्य जायगा। इसी बातका विश्वास दिलानेको मैंने तुझे नगरमे भेजा था। तुझे अब विश्वास भी हो गया। बहन! तेरा यह पुत्र कलसे ही मर चुका है। आज तुझे मालूम हो गया कि, तेरे ही समान

अनेक माताएं पुत्र वियोगके दुःखसे हाहाकार कर रही है। दुष्टिनी मौत बड़ी निर्दयतासे उनकी गोदमेसे उनके प्यारे बच्चों को हर ले गई है। पर किसीका कुछ वश नहीं चलता। यदि तेरे आंसू रुक जायं, और यह बालक पुनर्जीवित हो जाय तो मैं अपना खूनतक देनेको प्रस्तुत हूं। मैं इसी औषधिकी खोजमें घरसे निकला हूं, पर वह औषधि अभी तक मुझे नहीं मिली। जा तू अब इस बालकका अग्निसंस्कार कर! (प्रस्थान)

स्त्री--हाय बेटा! मुझे छोड़कर कहां चला।

(रोती हुई जाती है)

(पटाक्षेप)

पांचवा दृश्य

[स्थान—राजा शुद्धोधनका मंत्रणा गृह]

(सब सामान अस्त व्यस्त पड़े हैं)

(राजा शुद्धोधन)

शु०—ज्वाला…प्रचंड ज्वाला…कहां · नहीं…… तो…हा हा · हा…सिद्धार्थ · आया · आ ··बेटा (हाथ फैलाते हैं) आता नहीं? हंसता है, क्यो बुड्ढे बाप को जलाता है? ओफ! प्रकाश·· अन्धकार·· घोर · अन्धकार…हा·· हा · हा सिद्धार्थ…नहीं…आया ··(रोते हैं) आया? (हंसते हैं) हां, आया…आ…आ…आ (दौड़ते हैं, ठोकर लगनेसे गिर पड़ते हैं)

(धीरे २ मंत्रीका प्रवेश)

मंत्री—हाय! आज महाराजकी कैसी दशा हो रही है!

जो महाराज सुमेरुकी भांति विपत्तिके प्रचण्ड झोंकेको भी अपनी छाती पर बिना उफ़ किये झेल लेते थे। पुत्र शोकके कारण आज उन्हींकी क्या दशा हो रही है? मोहकी शक्ति भी कितनी प्रबल होती हैं? देखूं उठाऊं तो सही। शायद राजकार्य्यकी कुछ बातें करनेसे इन्हें सन्तोष हो जाय।

(गुलाब जल छींटता है)

शु०—(आंखें खोलकर) क्या आ गया? आ बेटा! आ देखतो तेरे वियोगमें शुद्धोधनकी क्या हालत हो रही है?

मन्त्री–महाराज! शान्त हूजिए।

शु—तेरे बिना मुझे कहां शान्ति सिद्धार्थ?

मंत्री–महाराज! मैं सिद्धार्थ नहीं हूं। मैं आपका आज्ञाकारी मंत्री हूं!

शु—क्या कहा तपस्या करने जायगा! नहीं बेटा मत जा। बुड्ढे बापका कहना मान। जहांतक मैं जीवित हूं, वहांतक कहीं मत जा, फिर जहां मरजी हो चले जाना।

मन्त्री–महाराज! यहां सिद्धार्थ कहां है, जरा होशमें आइए।

शु—क्या कहा! जायगा? नहीं मानेगा, अच्छा जा, लेकिन याद रखना इस बुड्ढे बापकी एक २ गर्म आह तेरे लिए प्रलयकी आंधी बनकर आयगी, और तेरे अस्तित्वको नष्ट कर देगी। इस बूड्ढेकी आंखोका एक एक बून्द आंसू तेरे लिए कहरका दरिया बन कर आयगा और तुझे नेस्तनाबूद कर देगा। जायगा? अच्छा जा मैं तुझें शाप दूंगा। और तेरे ही साथ २ इस सृष्टिका भी प्रलय कर दूंगा। जा! (मुट्ठिया बांधते हैं, और खोलते हैं)

मन्त्री अब क्या करूं। इनका दिमाग एक दम फिर गया है जाऊं वैद्यको ले आऊं। (जाता हैं)

शु—जाओ! कृतघ्न! नृशंस! जा मैं··(दौड़ते हैं) पटाक्षेप

पांचवां अंक

प्रथम दृश्य

(स्थान-वैशाखि नगरीका जंगल)

(ऋषि अराड़ कलाम, और सिद्धार्थ कुमार)

अ० क०—युवक। तुम कहांसे आरहे हो? तुमने यह सन्यास वेष कबसे धारण करलिया है? तुम्हारे चेहरेके अपूर्व तेजको देख-कर जान पड़ता है कि तुमने किसी भव्य कुलमें जन्म लिया है। तुम अपना परिचय दो।

सि० कु०—मैं राजा शुद्धोधनका पुत्र सिद्धार्थ कुमार हूं। इस संसारको जन्म, मरण और व्याधिके पंजेसे मुक्त करनेके लिए मैंने सन्यास व्रतको ग्रहण किया है। और उसी सत्यकी शोधमें मैं इधर उधर घूम रहा हूं। आपके नामकी कीर्त्तिको सुनकर मैं आपके ही पास सत्यको समझनेके लिए आया हूं। आप सांख्य मतके प्रवर्त्तक प्रसिद्ध ऋषि कपिलके शिष्य हैं। आशा है आप मुझे सन्तुष्ट करेंगे। कृपा कर मुझे बतलाइए कि, किस उपायके द्वारा जन्म, मरण और व्याधिके पजेसे मुक्त हो सक्ते हैं? उसके लिए किस प्रकार जीवन व्यतीत करना होता है, और अन्तमें कैसी स्थिति होती है?

अ० क०—तुम्हारे आदर्श बहुत ऊंचे हैं। तुम्हारे पवित्र भावों और अपूर्व स्वार्थ त्यागको देख कर मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है। तुम्हारे किये हुए प्रश्न बहुत ही गहन हैं। पर तुम्हारे आग्रहको देख कर दो शब्दोंमें उनका उत्तर देदेता हूं। सबसे

ऊंची स्थिति ब्रह्म है। ब्रह्म अमूर्त्तिक है। अक्रिय है, निर्विकार है, निर्गुण है, सच्चिदानन्द स्वरूप है। वह ब्रह्म जड़ वस्तुओंसे अलग है। जिस प्रकार अग्नि परसे राख दूर होजाने पर वह चमकने लगती है, या जिस प्रकार पींजरेमें पड़ा हुआ पक्षी आजादी मिलनेसे स्वच्छन्द हो उठता है, उसी प्रकार जड़ वस्तुओंसे दूर भगते रहनेसे ब्रह्मकी स्थिति मिलती है। वही मुक्ति है। मुक्तिके साधनोंमें मुख्य साधन श्रद्धा है। "आत्म, निर्विकार है" इस प्रकारकी भावनामय श्रद्धा रखनेसे मनुष्य निर्लिप्त हो जाता है। और परमपदको प्राप्त होता है।

सि० कु०—ठीक है महात्मन्।

अ० क०—अच्छा, अब तुम यहां बैठो, मैं जरा नित्य कर्मसे निवृत हो आता हूं। (प्रस्थान)

सिद्धार्थ—वास्तवमें इन महात्माका उपदेश बहुत ही युक्ति संगत और विद्वता पूर्ण है। पर फिर भी पूरा संतोष नहीं मिलता। (ऋषिका प्रवेश)

सि० कु०—महात्मन्। आपके उपदेशसे कृतार्थ हुआ, अब मैं कुछ दिनोंके लिए जानेकी आज्ञा चाहता हूं।

अ० क०—अच्छा बात है। युवक! तुम्हारे आदर्श स्तुत्य हैं। आशा है तुम अपने उद्देश्यमें सफलता प्राप्त करोगे।

(सिद्धार्थ कुमार जाते हैं)

(दृश्य—परिवर्तन)

(स्थान—गया नगरीके समीपका जंगल)

(पांच सन्यासी ध्यानस्थ बैठे हैं)

(धीरे २ सिद्धार्थ कुमारका प्रवेश)

सिद्धार्थ—अहा! ये लोग कितनी कठिन तपस्या कर रहे

हैं ? तपस्या करते २ इनका सारा शरीर जीर्ण हो गया है। उठने बैठनेकी शक्ति भी नहीं है। फिर भी शान्ति पूर्वक उसी उत्साहके साथ सत्यको खोजनेके लिए ये लोग कटिबद्ध हैं। क्या यह मार्ग ठीक है? देखूं, मैं भी आजमा कर तो देखूं। (पासही एक निर्जन स्थानमें समाधिस्थ हो बैठ जाते हैं।)

(दृश्य—परिवर्तन)

सि—तपस्या करते २ छः वर्ष बीत चुके। शरीरमें हिलने डुलनेकी भी शक्ति शेष नहीं रही। मुंहसे बोला नही जाता। इस प्रकार क्या सत्य की खोज हो सकती है। ओ... फ... कि...(मूर्च्छित)

(एक ग्वालेके लड़केका प्रवेश)

ग्वा० बा०—ओफ! इन महात्माका शरीर कठिन तपस्याके कारण कितना जीर्ण शीर्ण होगया है ? कठिन कष्टके कारण ये बेहोश होगये हैं देखूं इन्हें होशमें लानेकी चेष्टा करूं (बकरीके स्तनसे उनके मुंहमें दूधकी धार फेंकता है, जिससे वे होशमें आते हैं)

सि—भाई! तू कौन है। और क्यों मेरी सहायता कररहा है ?

ग्वा० बा०—महात्मन्! मैं एक ग्वालेका बालक हूं आपको यहां इस हालतमें देख कर मैंने आपके मुंहमे दूध फेंका था। आप यह प्रश्न क्यों कर रहे हैं कि "मेरी सहायता क्यों कर रहा है।" देव! यदि मनुष्य ही मनुष्यकी सहायता न करेगा तो फिर कौन किसकी करेगा ? यदि भाई ही अपने दुःखी भाईके लिए आंसू न बहायगा तो कौन बहायगा ?

सिद्धार्थ—(लज्जित होकर) भाई! क्षमा करना मैंने ऐसा कह कर भारी भूल की है। कृपा कर अपने लोटेमे थोड़ा दूध और दो।

ग्वा० बा०—महात्मन्! मैं शूद्र हूं। लोटेमें आपको दूध कैसे दूं आप अपवित्र हो जाएंगे।

सि०कु०—क्या कहा? शूद्रका लोटा छूनेमें मैं अपवित्र होजाऊंगा। शूद्र क्या मनुष्य नहीं होता? उसमें क्या मनुष्यत्व नहीं होता? एक नीच कुलमे जन्म मात्र लेनेसे क्या उसके सब अधिकार नष्ट हो जाएंगे। नहीं, हो नहीं सकता, जन्मसे कभी मनुष्य ब्राह्मण या शूद्र नहीं होकता। यह विधान बिलकुल गलत है। अन्याय है। शूद्रमें भी ब्रह्मणके समान दया, सहानुभूति, परोपकारिता, आदिदुगुणोंका होना सम्भव है उसी प्रकार ब्राह्मणमें भी शूद्रसे बढकर हेय और घृणित दुर्गुण हो सकते हैं। इस प्रकारके नियमको आश्रय देना भी अपराध है। विधाताको लांछित करना है। प्रकृतिके नियमकी अवहेलना कर ब्राह्मणोंने अपनी क्षमतासे इस अन्याय पूर्ण विधान की रचनाकी है। वह एक दिन बालूकी भीतकी नाईं, अवश्य गिर कर मिट्टीमें मिल जायगी। तुम शीघ्र मुझे दूध दो।

ग्वा० बा०—महात्मन्! आपकी जय हो। (दूध देना)

(पटाक्षेप)

(प्रथम-दृश्य समाप्त)
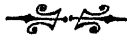
दूसरा दृश्य

(नदीके पासका एक ग्राम सुजाता ग्वालिनका मकान)

(सुजाता और उसकी दासी राधा)

सुजाता—ईश्वरकी कृपासे मेरी सब मनोकामना पूर्ण हुई। आज तीन मासका सुन्दर बालक मेरी गोदमें खेल रहा है। यह

सब वनदेवताकी कृपा है। आज चैत्रकी पूर्णिमा है। आजके दिन बनदेवीको खीरका भोजन चढ़ाना है। इसलिए तैयारी करना चाहिए।

राधा—हां, ठीक तो है, देवताके ही प्रसादसे आज तुम्हें यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है। तुम शीघ्र तैयारी करवा लो, इतनेमें वहांपर स्थान साफ कर आती हूं। (प्रस्थान)

सुजाता— अरी नमदा !

नर्मदा—क्या है मालिकिन ?

सुजाता—आज मुझे देवताको खीरका भोजन चढ़ाना है। इसलिए सब गौओं मेंसे एक हजार गौएं पसन्द करके उनका दूध निकलवाओ, वह दूध पांच सौ गायोंको पिला दो, फिर उनका दूध निकाल कर ढाई सौ को पिलादो इस पुकार दूध पिलाते पिलाते जब छः गायें रह जांय तब उनका दूध निकाल कर खीर बनाओ।

नर्मदा—जो आज्ञा। (प्रस्थान)

(राधाका प्रवेश)

राधा—आश्चर्य, आश्चर्य, एक दम आश्चर्य !!

सुजाता—क्यों क्या हुआ ?

राधा—अरे, तुम्हारा भारी सौभाग्य हैं। खुद बन देवता ही आज तुम पर कृपाकर तुम्हारा आहार लेनेको वृक्षके नीचे बिराजमान है।

सुजाता—(हर्षित होकर) सच ?

राधा—बिलकुल सच है, शीघ्रता करो।

सुजाता—(कपड़े पहन कर) अच्छा चलो। (प्रस्थान)

(दृश्य—परिवर्तन)

(बटवृक्षके नीचे सिद्धार्थ मुनिपद्मासन लगाये बैठे हैं)

(सुजाता और राधाका प्रवेश, सुजाता मुनिके पैरोंपर सिर रखकर उन्हें नमस्कार करती है, फिर उनके शरीर पर बढ़िया अतर लगाती है, और पात्रमें उज्वल खीर परोसती है। सिद्धार्थ भोजन करते हैं। भोजनसे उनके वदनमें नवीन स्फूर्त्तिका संचार हो आता है।)

सुजाता—(भक्ति पूर्ण हृदयसे) क्या देवताको मेरा आहार प्राप्त हुआ ?

(सिद्धार्थ कुमार बालकके मस्तक पर हाथ फेरते हैं)

सि—प्रियबालक ! तू चिरकाल तक सुखी रह। और मनुष्य जीवनके कर्त्तव्य पथको आसानीसे तय कर (सुजातासे) बहन, यद्यपि मैं देवता नहीं हूं। पर तौभी तेरा एक भाई हूं। मैं एक भटकता हुआ योगी हूं। और आज छः वर्षसे सत्यकी खोजमें घूमरहा हूं। मुझे विश्वास है कि, वह प्रकाश मुझे अवश्य प्राप्त होगा। कुछ समय पूर्व हीसे मुझे उस प्रकाशका आभास नज़र आने लगा है। पर निर्बलताके कारण वह अभीतक मुझे प्राप्त नहीं हो सका। सौभाग्यसे आज तेरे इस सात्विक भोजनसे मुझमें वह बल प्रात होगया है। तुझे तेरी इस सेवाका बड़ा भारी फल प्राप्त होगा।

सुजाता—महाभाग ! आप अवश्य उस प्रकाशको प्राप्त करो। (पटाक्षेप)

तीसरा दृश्य

[कामदेव और उसके भृत्य]

काम—सैनिक ! आजका दिन हम लोगोंके लिए बहुत

भयानक हैं। यदि आज पूर्ण रूपसे प्रतिकार नहीं हुआ तो हमारा अस्तित्व तक नष्ट हो जायगा।

अहंकार—बात क्या हैं? यह तो बतलाइए।

काम—तुम्हें मालूम नहीं है? आज सिद्धार्थ कुमारको बुद्धत्व प्राप्त होने वाला है। यदि वह उसे प्राप्त हो जायगा, तो फिर संसारसे हम लोगोंका अस्तित्व उठ जायगा। हमारा अस्तित्व नष्ट करने हीके लिए वह आज पन्द्रह वर्षों से कोशिश कर रहा है। आज यदि वह अविचल रह गया तो फिर उसे सफलता अवश्य मिल जायगी। वह हमारा कट्टर शत्रु है।

मोह—तो फिर क्या किया जाय? इसका उपाय होना तो जरूरी है।

काम—जरूरी ही नहीं अत्यन्त जरूरी है। यदि हमें अपना अस्तित्व रखना तनिक भी इष्ट है, तो आज पूर्ण शक्तिसे उपाय करना चाहिए। मैं रतिको भी बुलवा लेता हूं। (पुकारता है)

(रतिका प्रवेश)

रति—(अभिवादन करके) क्या आज्ञा है?

काम—आज तुम्हारी सच्ची परीक्षाका समय है। यदि आज तुम सफल हुई तो ठीक, अन्यथा तुम्हारा बचना भी कठिन हो जायगा।

रति—बात क्या हैं?

काम—वह देखो जो बोधि वृक्षके नीचे एक सन्यासी तप कर रहा है। उसे किसी भी तरह विचलित कर दो। चाहे उसमें कितनी ही शक्ति क्यों न लगाना पड़े।

रति—ओह! यह क्या बड़ी बात है? (जाती है)

कामदेव-तो अब हमें भी चलना चाहिए। (पुष्प धनुष लेना)

(प्रस्थान)

सरस, सुगन्धित, कोमल, सुखकर, सीतल मलय समीर बहाऊं॥
नन्दन काननको सुखलूटो, बीणा मुरली मृदंग सुनाऊं।
कोकिल कण्ठ मनोहर तानें, सप्त सुरन की उपज सुनाऊं॥
प्रेम सुधा तोरे तन, मन भरदूं, अंग, अंग में अनंग जगाऊं।

(सिद्धार्थ आंखें खोलते हैं)

सिद्धार्थ—देवियो ! तुम कौन हो ?

एक—प्रेमकी भिखारिणी।

सिद्धार्थ—प्रेमकी भिखारिणी ? प्रेम चाहती हो ? अच्छी बात है, मैं तुम्हें प्रेम दूंगा। ऐसा प्रेम दूंगा जो आकाशकी तरह विशाल, समुद्रकी तरह गम्भीर, और हीरेकी तरह उज्वल होगा। ऐसा प्रेम दूंगा जो ध्रुवकी तरह स्थित, सृष्टिकी तरह अविनाशी, और ईश्वरके नामकी तरह अक्षय होगा। ऐसा प्रेम दूंगा जिसकी मधुर लपटसे सारा संसार मुग्ध होकर, "मां ! मां !!" कहता हुआ तुम्हारे चरणोंपर लेटने लगेगा। पर बहनों ! उस प्रेमको प्राप्त करनेके पहले अपने कलुषित हृदयोंको शुद्ध करलो। इस ईश्वर प्रदत्त रूपमेंसे, इस अलौकिक सौन्दर्य्य मेंसे पैशाचिक भावनाको निकालकर देवत्वकी भावना भरदो। अपने अन्तरङ्गको बहिरंगकी तरह उज्वल बना लो। हृदयपरसे व्यभिचारका मैल हटाकर उसे स्फटिकके समान स्वच्छ कर लो। और फिर उस पवित्र हृदय मन्दिरमें प्रेम देवकी प्रतिष्ठा करो।

(सब एक दूसरेको देखती हैं)

(धीरे २ म्लान मुख यशोधराका प्रवेश)

यशोधरा—(पैरोंपर गिरकर) नाथ ! प्राणेश्वर, मुझे छोड़कर कहां चले आये ? (रोती है)

सिद्धार्थ—(सहमकर) यह क्या यशोधरा !!! (स्वगत) यह जागृति है या स्वप्न ? क्या सचमुच यशोधरा यहां आगई ?

नहीं, हो नहीं सकता, (दृढता पूर्वक) बिलकुल असम्भव ! वह प्रेममयी देवी इस समय यहां कदापि नहीं आसकती ! अवश्य यह कोई छल है। (प्रगट) वरांगने ! तुम्हारा छल सिद्धार्थ के सम्मुख नहीं टिक सकता। जाओ, तुम अपने असली रूपमें होजाओ। (असल रूप हो जाती है, सबका निराश भावसे प्रस्थान)

(एक देवताका प्रवेश)

दे—महाभाग ! आज आपके इस मनोरथ सिद्धिमें विघ्न डालनेके लिए अनेक षड़यन्त्र रचे जारहे हैं। अभीतकके सभी षड़यन्त्र विफल हुए हैं, इसबार स्वयं कामदेव ससैन्य आपको तपोभ्रष्ट करने आरहा है।

सि—आने दो कोई डर नहीं है। आत्मिक शक्तिका मुकाबिला कोई शक्ति नहीं कर सकती। सत्याग्रह एक ऐसी शक्ति है जिसे कोई विनष्ट नहीं कर सकता। इस शक्तिका प्रतिद्वन्दी आपही आप परास्त हो जाता है। तुम चिन्ता मत करो। (देव जाता है)

(कामदेवका प्रवेश)

काम—क्षत्रिय कुमार ! उठो अब तुम्हारा कार्य्य पूर्ण हो गया है। तुम्हारे लिए स्वर्गका मार्ग अब साफ होगया है। संसार उद्धार की व्यर्थ डींग मारना छोडकर आनन्द पूर्वक अपना समय व्यतीत कर अक्षय स्वर्गके भागी बनो। नहीं तो फिर सहजहीमें मेरे कोपके भाजन बनोगे। और दीन एवं दुनिया दोनोंसे हो जाओगे। (सिद्धार्थ कुमार ज्योंके त्यों ध्यानस्थ रहते हैं)

काम—(क्रोधित होकर) ओ घमण्डी ! तू मेरा कहना न मानेगा ? अच्छा तो ले सम्हाल अब अपने आपको। (बाण

छोड़ता है, वह व्यर्थ जाता है। सिद्धार्थ ज्योंके त्यों स्थित रहते हैं)

(अन्तमें अनेक प्रकारके उपद्रव कर निराश होकर काम
देव चला जाता है)

(उसके जाते ही चारों ओर एक अलौकिक प्रकाश
छा जाता है, देवता आकर उनके चरणोंमें सिर
झुकाकर स्तुति करते हैं।)
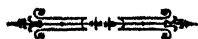
चौथा दृश्य

(राजा बिम्बसारका दरबार)

एक सामन्त—भगवन्! सुना गया है कि, कुमार सिद्धार्थको बुद्धत्वकी प्राप्ति हो गई है। और वे विहार करते २ आज यहां समीपवर्त्ती बनमें आये हैं।

बिम्बसार—क्या यह बात सच है? यदि सच है तब तो हमारा बड़ा सौभाग्य है।

(एक प्रहरीका प्रवेश और अभिवादन करना)

प्रहरी—भगवन्! एक अक्षय तेजके धारी मुनीश्वर नगरके पासवाले बनमे ठहरे हुए हैं, ऐसा बन मालीका कथन है। सुना है कि ये भगवान् बुद्ध ही हैं।

बिम्बसार (हर्ष पूर्वक पोशाक उतारकर) जाओ यह तो उस बनमालीको दे दो। और यह स्वर्ण मुद्रा तुम लो! (प्रहरी जाता है) अच्छा तो अब हमलोगोंको भी वहां चलने की तैय्यारी करना चाहिए। आज मेरे बड़े भाग्य हैं जो स्वयं बुद्ध भगवान् मेरे बनमें आकर ठहरे हैं।

दृश्य–परिवर्तन

(एक वृक्षके नीचे महात्मा बुद्ध समाधिस्थ हो बैठे है)

बिम्ब—भगवन्! राजा बिम्बसार चरणोंमें अभिवादन करता है। (सबके साथ पैरोमें मस्तक नवाना)

बुद्ध—(आंखें खोलकर) आओ राजन्! प्रसन्न तो हो न?

बिम्ब—भगवन्! आपकी कृपासे मैं प्रसन्न हूं। जबसे आपने मुझ कुमार्गीको सत्पथ बतलाया है तभीसे मेरे हृदय को शान्ति मिल रही है। अब सेवक भगवन्का कुछ उपदेशामृत पान करनेके हेतुसे आया है।

बुद्ध—राजन्! इतने दिनोंकी तपस्याके पश्चात् मुझे जो कुछ ज्ञान प्राप्त हुआ है, उसका सार तुम्हें कहता हूं सुनो, मैंने बाह्य और अन्तर्जगत्में होनेवाली क्रियाके कार्य्य और कारण भावपर विचार किया है। मुझे मालूम हुआ कि बाह्य जगत्मे मनुष्य की उत्पत्ति स्थिति और विनाश होता है। अन्तर्जगतमें या अध्यात्मिक जगत्में भी कुछ वृतियां मङ्गल कारक और कुछ अमंगल कारक होती हैं। अविद्याके वश होकर ये घोर दुखका कारण बनती हैं। अविद्यासे संस्कार, संस्कारसे विज्ञान, विज्ञानसे नामरूप, और उससे क्रमशः स्पर्श वेदना तृष्णा उपादान, भव, जाति, जरा, मरण शोक, परिदेव, दुःख दौर्मनस्य उपायास आदिकी उत्पत्ति होती है। इसी अज्ञानके कारण प्रत्येक मनुष्य अपना २ संसार निर्माण करता है। घट, पट, मनुष्य, वृक्ष, लता, आदि किसी भी विषयका ज्ञान अज्ञान है। वह अज्ञान अनादि है, इस अज्ञानका हमारे हृदयपर जो परिणाम होता है, उसका नाम संस्कार हैं! आज तक हमने जो जो पदार्थ देखें हैं, चाहे अभी वे हमारी आंखोंके आगे प्रत्यक्ष न हों, पर उनकी आकृति या प्रकृति हमारे अन्तः करण पर संस्कार

रूपसे रहती है। इसी संस्कारसे विज्ञानकी उत्पत्ति होती है। विज्ञानके कोई पांच भेद करते हैं, कोई छः। कोई केवल, स्पर्श, स्वाद घ्राण, दर्शन और श्रवणको ही मानते हैं, कोई "मन" को भी इसीमें शुमार करते हैं। इस ज्ञानका रूप रसादि पांच विषयों और चक्षु, कर्णादि इन्द्रियोंसे दृढ़ सम्बन्ध है। विषयोंका इन्द्रियोंसे जो सम्बन्ध है उसे स्पर्श कहते हैं यह स्पर्श सुख, दुःख और अदुखा सुख, इन तीन सम्वेदनाओंका कारण है। संवेदनासे तृष्णाकी उत्पत्ति होती है। और तृष्णासे उपादान या कर्म पैदा होते हैं। शारीरिक, मानसिक और वाचिक इन त्रिविध कर्मोंसे धर्माधर्मकी उत्पत्तिहोती है। और धर्माधर्मका फल भोगनेके लिए जीवको जन्म धारण करना पड़ना है। जन्म के साथ २ जरा, मरण शोक, परिवेदना, दुःख और दौर्मनस्य लगे हुए हैं। इन सब बातोंका मूल कारण अविद्या और अज्ञान ही ठहरता है अतएव उसका नाश करनेसे सब दुःखोंका नाश होता है।

बिम्बसार—ठीक है भगवन्। आपका ज्ञान अगाध है। अब मैं कुछ सामाजिक विषयमें भगवानके विचार सुनना चाहता हूं। आज कल ब्राह्मण लोगोंने जो उपद्रव मचा रक्खे हैं वे आपसे छुपे नहीं। शूद्र लोगोपर कितना अत्याचार किया जा रहा है। उनकी गर्म आहोंसे सारा गगन व्याप्त हो रहा है। हमलोगोंका दण्ड विधान बनाने वाले भी वे ही ब्राह्मण हैं। इस लिये हमें भी मजबूर होकर उनकी आज्ञाका पालन करना पडता है यदि ब्राह्मण शूद्रका शिर भी काट ले तो वह क्षम्य है। और यदि भूलसे शूद्रके मुखसे वेद मन्त्रका उच्चारण भो हो जाय, तो अक्षम्य है। भगवन! क्या इसका कुछ भी प्रतिकार न होगा?

बुद्ध—होगा। क्यों नहीं होगा। स्वार्थमें अन्धे होकर

ब्राह्मणोंने जिन मनमाने विधानोंकी रचना कर डाली है, उन्हें मिटाना जरूरी है। यह भारतके लिये कलंक है। आर्य्य जाति का दूषण है, सभ्यताका घातक है यदि यही नियम रहा तो एक दिन भारत वर्ष दूसरी जातिके पैरोंतले कुचला जायगा। वह गुलाम हो जायगा। इस सृष्टिमें सब मनुष्य बराबरीका हक लेकर पैदा होते हैं। फिर क्या कारण है कि एक नीचात्मा भी केवल उच्चवंशमें जन्म लेनेके कारण मोक्षका अधिकारी हो सकता है और एक पवित्रात्मा केवल शूद्रके घरमें जन्म लेलेनेके कारण वेद मंत्रका उच्चारण करनेमें भी दण्डनीय होता है। अफसोस आर्य्य जातिके पतनकी चरम सीमा है। मैं इस अविचारको सहन नहीं कर सकता। मैं उद्धार करूंगा, अपने उन भाइयोंका उद्धार करूंगा! जो जाति परम्पराकी वजहसे इन अनुदार ब्राह्मणोंके शिकञ्जेमें फंसे हुए हैं। घोषणा कर दो कि मनुष्य मनुष्य सब बराबर हैं। क्या ब्राह्मण और क्या शूद्र सभी मोक्षके अधिकारी हैं—घोषणा कर दो कि बुद्धके झण्डे के नीचे सभी मोक्षके इच्छुक आवें। वे भी आवें जो अशान्तिमें तड़फ रहे है, वे भी आवें जो अत्याचारसे सताए हुए हैं। चाहे शूद्र हो चाहे ब्राह्मण बुद्ध उन्हें मुक्तिका मार्ग बतलावेगा।

बिम्ब—महात्मन्! आपको धन्य है। आपने इस पवित्र कार्य्यको हाथमें लेकर मनुष्य जातिके उस अधिकांश भागका बडा उपकार किया है, जो अत्याचारियोंके द्वारा सताया हुआ है। अब आप कृपाकर चलकर मेरे महलको अपनी पदरजसे पवित्र करें।

बुद्ध—राजन्! मैं अवश्य चलूंगा। तुम्हारे समान भव्य प्राणीको देखकर मेरा हृदय आल्हादित होता है। पर इस समय जरा मैं अपने पिता, पुत्र और परिजनोंसे मिलना चाहता हूं। उनसे मिलकर अवश्य तुम्हारे यहां आऊंगा।

बिम्ब—अच्छा भगवन्! लेकिन आप शीघ्र ही पधारें।

बुद्ध—तथास्तु।

पटाक्षेप

पांचवा-दृश्य

(स्थान—राजा शुद्धोधनका दरबार)

शुद्धोधन—मंत्रीजी! पूरी तरह तैय्यारी करो। सारे नगरको रोशन करदो। आज मेरा सिद्धार्थ वापस आरहा है। पन्द्रह बरससे खोई हुई निधि लौट रही है। आज मेरा सौभाग्य है।

मंत्री—भगवन्! नगरको रोशन करनेमें किसी तरहकी कमी नहीं रक्खी गई है। (स्वगत) महाराज! अभीतक तुम पुत्र प्रेममे अन्धे हो रहे हो। अरे, अब भी तुम नहीं समझते कि, जिस महात्माने संसारके तमाम सुखोंका लात मारदी है वह इन आडम्बरों पर कैसे मुग्ध होगा?

शु०—अभीतक सिद्धार्थको लेकर आदमी आपस नहीं आये। यह काहेका कोलाहल सुनाई पड़ रहा है? आगया ..आगया... मेरा सिद्धार्थ आगया।

(नेपथ्यमे "जय भगवान् बुद्ध की" सुनाई पड़ती है)

(कई भिक्षुकोंके साथ महात्मा बुद्धका प्रवेश)

बुद्ध—(शुद्धोधनसे) राजन्! सुखी रहो।

शुद्धो०—सिद्धार्थ! यह क्या? आशीर्वाद लेनेके बदले तू मुझे आशीर्वाद दे रहा है? अभीतक तूने इन गेरुए वस्त्रोंको नहीं फेंका? बेटा! कहांतक इस बुड्ढे बापको खिजायेगा? अब शीघ्र इन कपड़ोंको उतारकर राज्य वेशको धारण कर। और इस राज्यको सम्हाल। मुझसे अब कार्य्य नहीं होता।

बुद्ध—राजन्! शान्ति! जराधैर्य्य रखिए! पींजरेमेंसे उड़ा हुआ पक्षी, फिरसे कभी पींजरेमें आनेकी चेष्टा नहीं करता। राजन्! मैं जिस विशाल राज्यका मालिक हुआ हूं। उसके आगे यह राज्य तुच्छ है। आपका राज्य पार्थिव राज्य है। वह स्वर्गीय राज्य है। आपका राज्य स्वार्थमय एवं लालसाओंसे युक्त है। वह राज्य पवित्र, प्रेममय, एवं लालसाओंसे मुक्त है। आपका राज्य सूर्य्यके प्रचण्ड तापकी तरह जलाता और प्रकाशित करता है। वह राज्य चन्द्रमाकी शीतल चान्दनीकी तरह केवल प्रकाशित करता है, जलाता नहीं। आपका राज्य एक छोटीसी पार्थिव सीमाके अन्दर बन्द है। मेरा राज्य सारे विश्व पर अबाधित रूपसे स्थित है। आपका राज्य शत्रुओंके हमलोंसे, प्रजाके विद्रोहसे हमेशा आशंकित रहता है। पर मेरा राज्य ऐसा है जहां न क्षोभ है, न चिन्ता है, न आशंका है। उसमें केवल प्रेम ही प्रेम है। अब आप ही बतलाइए कि, कौनसे राज्यको ग्रहण करूं?

शुद्धोधन—महात्मन्! क्षमा कीजिए। अब मैं समझा अब मेरे ज्ञान चक्षु खुल गये। आजतक मैं मोहके अन्धकारमें डूबा हुआ था। अब मुझे प्रकाश नज़र आने लगा है। वास्तवमें आपका राज्य बहुत विस्तीर्ण है। मेरा राज्य खूनसे भरी हुई नदियोंपर स्थित है। आपके राज्यकी नीव प्रेम तरंगिणी पर जमी हुई है। महात्मन्! मुझे भी उस राज्यमें प्रवेश करने योग्य बनाइए।

बुद्ध—तथास्तु। राजन्! तुम्हारे इस विचार परिवर्त्तनको देखकर मैं अत्यन्त आनन्दित हुआ। अब मैं ज़रा भोजनके निमित्त शहरमें जाता हूं, वापस शीघ्र ही आऊंगा।

शुद्धो—महात्मन्! यह क्या? क्या शुद्धोधनके घरमें किसी बातकी कमी है, जो मैं आपको अन्यत्र भोजनके निमित्त जाने

दूं। नहीं शुद्धोधनके रहते यह किसी तरह नहीं हो सकता। आप महलमें चलकर भोजन कीजिए।

बुद्ध—राजन्! आपका कथन सत्य है। पर मैं इस समय राजकुमार सिद्धार्थ नहीं हूं। इस समय मैं एक भिक्षुक हूँ। और भिक्षुकका धर्म यह नहीं है कि बिना शहरमें घूमें अपने सम्बन्धियों-के यहां भोजन कर ले। इस लिए मैं क्षमा चाहता हूं।

शु—महात्मन्! यह तो आप बिलकुल अनुचित कर रहे हैं। इससे शुद्धोधन संसारमें बदनाम हो जायगा।

बुद्ध—नहीं राजन्! इसमें बदनामीका कोई डर नहीं है।

(प्रस्थान)

शुद्धोधन—वास्तवमें मेरापुत्र इस छोटेसे भूखण्डका स्वामी होनेके योग्य नहीं है। वह तो सारे विश्वका सम्राट है।

(पटाक्षेप)

छठा दृश्य

(यशोधरा)

यशोधरा—आजका दिन भी कितना पवित्र उदय हुआ है? आज मेरे प्रियतम वापस आ रहे हैं। हृदय हर्षसे आल्हादित हो रहा है। अभीतक नही आये......आते ही होंगे।

(भगती हुई एक दासीका प्रवेश)

दासी—रानीजी! रानीजी! खुशी मनाओ-हर्ष मनाओ, आज तुम्हारे सौभाग्य सूर्य्यका उदय हुआ है। कुमार-महाराज राज्य सभामें उपस्थित हो गये हैं।

यशो—यें! आ गये! आ गये! अच्छा चलूं, अब विलम्ब

सह्य नहीं होता। वे यहां नही आये तो मैं ही राज सभा चली चलूं। अब लज्जा किस बातकी? भरी राज सभामें उनके पैरोंपर गिर पड़ूंगी। अपने आंसुओंके सोतेसे उनके पैर धोदूगी। (जल्दी २ द्वारकी ओर बढ़ती है और फिर एकाएक रुक जाती है) ना, मैं नहीं जाऊंगी। मैं क्यों जाऊं? मेरे स्वामी आये हैं तो वे अवश्य यहां मुझसे मिलनेको आएंगे।—पन्द्रह बरसके पहले जैसे आते थे वैसे ही आवेंगे। यदि मेरे प्रेममें कुछ भी आकर्षण है, यदि उसमें कुछ भी सत्यता है तो वे अवश्य यहां खिचे हुए चले आएंगे। चाहे वे बुद्ध हों, चाहे संसारके पूजनीय हों, पर यशोधराके तो वही सिद्धार्थ हैं। (दृढ़तासे) मैं न जाऊंगी।

(कुमार राहुलका प्रवेश)

यशोधरा—(हृदयसे लगाकर) आ मेरे प्राणाधिक मेरी आंखके तारे!! (मूंह चूमती है)

राहुल—माता जी! आज तो राजसभामें एक तेजस्वी महर्षि आये हुए हैं। चन्द्रमा की तरह उनका ललाट तेजसे चमक रहा। उनकी ओर देखते ही उनके पैर पकड़नेकी इच्छा होती है। माता जी! वे कौन हैं तुम जानती हो?

यशोधरा—हां राहुल! जानती हूं। वे और कोई नहीं तेरे पिता हैं।

राहुल—ऐं! मेरे पिता!!

यशोधरा—हां बेटा! तेरे पिता। जब तू बहुत छोटा था, तभी वे तुझे छोड़ कर चले गये थे। आज पन्द्रह बरसोंमें वापस आ रहे हैं।

राहुल—तब तो माताजी! वे जरूर मेरे लिये कोई अच्छी वस्तु लाये होंगे!

यशोधरा—हां लाये हैं! जरूर लाये हैं! ऐसी वस्तु लाये हैं

जैसी आजतक संसारका कोई पिता अपने पुत्रके लिए नहीं लाया होगा, बेटा! वह अमूल्य वस्तु है। उसका मोल संसारमें कोई नहीं कर सकता।

राहुल—वह क्या वस्तु है माता जी?

यशोधरा—ज्ञान! मृत्युपर विजय प्राप्त करनेका अमोघ अस्त्र!

(इतने हीमें नेपथ्यमें "भगवान् बुद्धकी जय" सुनाई पड़ती है)

(यशोधरा द्वारकी ओर देखती है)

(बुद्ध देवका प्रवेश)

यशोधरा—("नाथ! नाथ!!" कहती हुई दौड़कर बुद्धके पैरोंसे लिपट जाती है) मेरे नाथ! मेरे स्वामी! मुझे छोड़ कहां चले गये?

(बुद्ध दयार्द्र दृष्टिसे उसकी ओर देखते हैं)

(यशोधरा एकाएक सहम कर उठ खड़ी होती है)

यशोधरा—ना, तुम मेरे कौन होते हो? कोई नहीं। मैं अपने पत्नीत्वका बलिदान बहुत समय पहलेसे कर चुकी। सन्यासिनी यशोधराका इस संसारमें अब कोई नहीं है। क्षमा करना प्रभु! क्षणिक उन्मादमें आकर मैंने आपका स्पर्श कर लिया है। तुम मेरे कोई नहीं! कोई नहीं!! कोई नहीं!!!

(पागल की भांति गर्म आहें खींचती हुई चली जाती है)

बुद्ध—इसको कोई भारी धक्का लगा है।

(यशोधराका पुनः प्रवेश)

यशो—कोई नहीं, पर पूजनीय तो हो। तुम सारे संसारके पूजनीय हो, यशोधरा भी उसी संसारका एक कण है उसी अनन्त सागरका एक बिन्दु है। भगवन्! बुद्ध! मुझ पर दया करो। अशान्ति की दारुण ज्वाला मुझे जला रही है, मुझे उस

से बचाओ! स्वार्थकी प्रबल बाढ़में मैं बही जा रही हूं, भगवन् मेरी रक्षा करो!! मोहका प्रबल इन्द्रजाल मुझे संसारमें फंसानेकी चेष्टा कर रहा है। भगवन्! उससे मुझे बचाओ। सन्यासिनी यशोधरा संसारके धक्कोंसे चूर्ण विचूर्ण होकर शरण में उपस्थित हुई है। रक्षा करो देव! रक्षा करो!!!

बुद्ध—शान्ति! देवी शान्ति—तुम्हारे ही अपूर्व स्वार्थत्यागके कारण आज सिद्धार्थको बुद्धत्वकी प्राप्ति हुई है। देवी पापकी क्या मजाल है जो तुम्हें स्पर्श भी कर सके। वह देखो तुम्हारी महिमासे वह पृथ्वीमें धंसा जा रहा है। यशोधरा! तुम भारतीय रमणियोंकी आदर्श हो।

यशोधरा—तो भगवन्! विलम्ब न कीजिये सन्यासिनी यशोधराको अब संसारमें अच्छा नहीं लगता। अब उसे परोपकार की सृष्टिमें ले चलिए। मुझे अपने धर्ममें दीक्षित कीजिए।

राहुल—पिताजी! अब मैं भी इस मायावी दुनियांमें रहना नहीं चाहता। मुझे भी उस सृष्टिमे ले चलिए जहां प्रेमकी तरिङ्गिणी शत धारा होकर बह रही हो। जहां परोपकारका पवन मधुर गतिसे प्रवाहित हो रहा हो। जहांके वृक्ष, पशु और लता भी विश्वप्रेमके उपासक हों। भगवन्! मुझे उस सृष्टिमें ले चलिए जहां स्वार्थ नहीं हो, हिंसा नहीं हों, कृतघ्नता नहीं हो, जहां पर अहिंसाका अनन्त सागर लहरा रहा हो। विश्वासकी वाटिका फूल रही हो। और निर्विकार आनन्द की बिजलियां स्नेहके श्याम गर्भमें खेल रही हों।

सिद्धार्थ—प्रिय कुमार! अभी तुम्हारी उम्र छोटी है। अभी तुमने दुनियांका कुछ भी अनुभव हासिल नहीं किया हैं। इसलिए कुछ समय ठहरो, दुनियांको देख लो, फिर जैसा उत्तम जंचे वैसा करना।

राहुल—नहीं महात्मन्! मुझे उस दुनियांका अनुभव नहीं करना जहां पर बुढ़ापेका और मृत्युका डर बना हुआ है। जहां पर हिंसा राक्षसीका प्रबल चक्र चल रहा है। जहां विश्वास कृतघ्नताके पैरों पर लेट रहा है, प्रेम पर मोहका आतंक छा रहा है। नहीं, पिताजी नहीं, ऐसी दुनियांका अनुभव मैं नहीं किया चाहता। मुझे अपने चरणोंमें स्थान दीजिए।

बुद्ध—अच्छी बात है, वही हो! (सब पीले वस्त्र और खड़ाऊं पहनते हैं) (सब गाते हैं)

हिन्द देशके नहीं बुद्ध, सब जगके प्रीतम।
केवल भारतके न विश्व भरके हैं गौतम।
लखो अहिंसा रूप मोक्ष सोपान मनोहर।
दुःख मृत्युको भोग भयो पूरो यहि भूपर।
सुख माया दुःख भ्रान्ति है, नित्य मोक्ष औ शान्ति है।
भारतवासी! लेहु सब शुभ तुम्हरो सब भांति है।*

(पटाक्षेप)

---

*उपरोक्त और पृष्ट १२१-२२ में आया हुआ गायन श्रीयुत रूपनारायणजी पाण्डेय द्वारा अनुवादित और श्रीयुत नाथूरामजी प्रेमी द्वारा प्रकाशित "सिंहल विजय" नामक नाटकसे उद्धृत किया गया है, अतएव हम उपरोक्त महाशयोंके अत्यन्त कृतज्ञ हैं।

—लेखक